तृतीय अध्याय

"सिंदूर की होली" नाटक के अंतर्गत समस्याएँ

तृतीय अध्याय

"सिंदूर की होली" नाटक के अंतर्गत समस्याएँ

प्रस्तावना :-

आधुनिक युग के समस्या नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्रजी का "सिंदूर की होली" सर्वोत्कृष्ट सामाजिक समस्या-प्रधान नाटक है। इस नाटक का उद्देश्य सत्य की खोज़ करना है। नवीन मूल्यों की स्थापना के लिए प्राचीन जीवन - मूल्यों और विश्वासों को उध्वस्त किया गया है। इस नाटक पर इब्सन तथा शॉ की बौद्धिकता का प्रभाव दिखाई देता है। मिश्रजी को वर्तमान जीवन की परख है। परंतु समस्याओं का जो निदान उन्होंने स्पष्ट किया है न तो उसे बुद्धि मान सकते है और न तो वह तर्क निरूत्तर है। सच तो यह है कि मिश्रजी परिस्थितियों के दबाव में पडकर समझौता कर लेते है।

"सिंदूर की होली" की आत्मा भारतीय है, जिसकी समस्याओं का निराकरण भारतीय रूढ़ि और पद्धतियों के आधारपर हुआ है। उनमें आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण का आलोचन अधिक है प्रशंसन बहुत कम।"[1]

इस नाटक में चिरंतन एवं आधुनिक नारी की समस्या और विवाह की समस्या का चित्रण प्रमुखतः यथार्थ रूप से हुआ है। मिश्रजी नारी को दिमाग से बुद्धिवादी मानते हैं किंतु हृदय से एक भारतीय भावुक नारी समझते हैं। इसीलिए इनके इस नाटक में एक ओर बौद्धिक चित्रण झलकता है, तो दूसरी ओर हृदयगत भावुकता भी। नारी के अंतरमन में उठनेवाले द्वंद, प्रेम, विधवा-विवाह तथा सेक्स आदि समस्याओं का विश्लेषण करते हुए सामाजिक कुरीतियों, अन्यायपूर्ण न्याय-विधियों

तथा उच्च पदीय लोगों के काले-कारनामों का भी चित्रण नाटककार ने यथार्थ रूप से किया है। इस नाटक का समस्या-चित्रण समस्या-नाटक की समस्या-चित्रण प्रक्रिया के सानुरूप है। इसमें पारिवारिक, सामाजिक, शासकीय, न्याय-विधि, सेक्स, विवाह एवं वैधव्य से संबंधित जो समस्याएँ ली हैं, उनपर मिश्रजी ने तार्किक शैली में बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक एवं प्रकृतिवादी दृष्टि से विचार किया है।

मिश्रजी ने समस्या-मूलक नाटकों की शैली को पूर्णतः अपनाया तथा बौद्धिक दृष्टिकोण से समस्याओं पर वाद-विवाद नाटकों में प्रस्तुत किया। उन्होंने समस्याओं पर तर्कपूर्ण आलोचना की है। उनका मत है कि - "बदलते हुए युग के साथ हमें बदलना चाहिए। मिथ्या, भावुकता तथा रोमांन्स की ओर से ध्यान हटाकर हमें स्वतंत्र व्यक्तिगत साधना की ओर झुकना चाहिए।"[2] हिन्दी के समस्या नाटककारों ने वर्तमान जीवन की समस्या-विशेष को आधार बनाया है। इस बारे में मिश्रजी लिखते हैं - "मैंने जो कुछ अनुभव किया है, देखा है, उसे इस नाटक के रूप में सामने रख देता हूँ यथार्थ, ज्यों-का-त्यों ईमानदारी के साथ।"[3]

इनके नाटकों में चित्रित समस्याएँ नर और नारी के कोमलतम मन को स्पर्शित करती है। अतः 'सिंदूर की होली" की कथावस्तु निम्नांकित हैं :-

कथावस्तु :-

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र जी का सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त नाटक - "सिंदूर की होली" की रचना सन 1934 ई· में हुयी। मिश्रजी के समस्या नाटकों में इसका एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत नाटक का कथानक स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय समाज का एक चित्र है, जिसमें बडे अफसरों और जमीनदारों के अत्याचारों का उल्लेख है। इसके साथ ही नारी और पुरूष के सम्बंद्ध अन्य सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। "इस नाटक का मूलाधार "कर्म प्रतिफल--न्याय का सिद्धांत" है। इसी कार्य की प्रतिक्रिया विपक्षी की ओर से हो तो भी मनुष्य अपने कर्मो के फल से मुक्त नहीं होता। किसी-न-किसी प्रकार उसको उन कर्मों का परिणाम भुगतना ही पडता है।"[4]

प्रस्तुत नाटक में रजनीकांत की हत्या यह एक ही घटना घटित हुई है और अन्य पात्रों का मानसिक संघर्ष चित्रित किया गया है। नाटककार ने प्रत्येक व्यक्ति की भावना और उसके व्यक्तित्व का चित्रण सहानुभूतिपूर्वक किया है। अतः "उनका यह प्रस्तुत नाटक कलागत प्रौढ़ता और विवेक का द्योतक है।"[5]

"सिंदूर की होली" नाटक की कथावस्तु तीन अंको में विभाजित की गयी है :-

प्रथम अंक :-

नाटक के कथानक का प्रथम अंक डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल के बंगले से होता है। माहिरअली उनका पुराना मुंशी है, जो उनके यहाँ अपने मालिक के लिए बडे-बडे लोंगों को फँसाना और उनसे अधिकतम रकम वसूल करने का कार्य करता है। नाटक का आरंभ ऐसे ही एक घटना को लेकर होता है, जिससे ज्ञात होता है, कि मुरारीलाल अपने मित्र के पुत्र मनोजशंकर के विलायत जाने का खर्च किसी असामी से प्राप्त करने की सोच में है। माहिरअली यह बताता है कि रजनीकांत 17-18 साल का लडका है, जिसके पिता को मरे अभी साल भी पूरा नहीं हुआ है। उसकी कमजोरी और निःसहाय अवस्था को देखकर रायसाहब भगवंतसिंह उसके संपत्ति को ही हड़प नहीं करना चाहता, बल्कि मुरारीलाल को दस हजार रूपये देकर उसकी हत्या करने पर तुला है। हरनंदनसिंह के कितना समझाने पर भी उसके निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार कथावस्तु का आरंभ पट्टीदारों के कलह की समस्या से लेकर होता है, जिसमें रजनीकांत के सम्बद्ध में किसी षडयंत्र और समस्त कथावस्तु में उसके विशेष स्थान का परिचय प्राप्त होता है। इसमें यह भी व्यक्त होता है, कि मुरारीलाल की ही वजह से मनोजशंकर के पिताने आज से दस वर्ष पूर्व आत्महत्या की थी। तब से मुरारीलाल इस पाप का प्रायश्चित करना चाहते हैं और मनोज के लिए बड़े से बड़ा आत्मोत्सर्ग करने के लिए तत्पर है। तभी तो भगवंतसिंह द्वारा हजार रूपये की रिश्वत स्वीकार करते हैं।

इसके बाद चंद्रकला और मुरारीलाल की बातों से विदित होता है कि मनोज लखनऊ में बीमार है, वह अपने पिता की आत्महत्या का रहस्य जानने के

लिए व्याकुल है। इसके उपरांत भगवंतसिंह और हरनंदनसिंह आकर माहिरअली के माध्यम से मुरारीलाल को रिश्वत पहुँचाते हैं, तब मुरारीलाल उन्हें रजनीकांत का जीवन सुरक्षित रहने के लिए चेतावनी देते हैं। किंतु भगवंतसिंह विकलता के स्वर में कहता है कि रजनीकांत का जीवन अब तक समाप्त हो गया होगा। फिर भी मुरारीलाल उससे अधिक धन प्राप्त करना चाहते हैं। उन्हें रजनीकांत के जीवन की सुरक्षा की चिंता है। मुरारीलाल और माहिरअली के बातचित से यह मालूम होता है कि रजनीकांत का व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षित है। यह अत्यंत दुःख की बात है, कि उसका जीवन अंधेरे की गहन छाया से भरा हुआ है। मुरारीलाल यह स्पष्ट करता है, कि यदि वह रिश्वत नहीं लेता तो भी भगवंतसिंह छूट जाता इसलिए मुरारीलाल यह रिश्वत लेता है। इसी बीच रजनीकांत मुरारीलाल से मिलने आता है। चंद्रकला उसके सौंदर्य और हास्य को देखकर प्रथम दर्शन में ही रजनीकांत पर आसक्त हो जाती है। रजनीकांत के प्रति उसकी सहानुभूति है। इसी समय बाल विधवा मनोरमा प्रवेश करती है। उसके हाथ में रजनीकांत का चित्र हैं, जिसका निर्माण उसने स्वयं किया था। उस चित्र के माध्यम से ही रजनीकांत के बारे में चंद्रकला और मनोरमा का वार्तालाप होता है। इसेस स्पष्ट होता है कि रजनीकांत विवाहित है। मनोरमा का विवाह केवल आठ वर्ष की आयु में हुआ था। किंतु दो वर्ष के बाद ही उसके पति की मृत्यु हो चुकी थी। लेकिन मनोरमा को विधवा होने का दुःख नहीं है। मनोरमा रजनीकांत का चित्र उसके पत्नी के पास भेज देना चाहती है। किंतु चंद्रकला यह नहीं चाहती क्यों कि वह कहती है कि उसकी पत्नी अशिक्षित है। इसपर मनोरमा कहती है कि "शिक्षा और कला का सम्बद कुछ नहीं है। कला का आधार तो है विश्वास और शिक्षा का संदेह।"[6] किसी भी चित्र का आधार साकार ही हो सकता है क्यों कि निराकार कला क्षेत्र की वस्तु नहीं है। किंतु चंद्रकला के हृदय में व्याप्त रजनीकांत के प्रति अव्यक्त प्रेम भावना का अभास मिलता है। जिसके कारण वह उसका चित्र अपने पास रख लेना चाहती है।

मुरारीलाल की चंद्रकला इकलौती बेटी है, जिसकी शादी वह मनोजशंकर के साथ करना चाहता है, पर चंद्रकला उसकी ओर आकर्षित नहीं है। इसी बीच मनोजशंकर परीक्षा छोडकर चला आता है और रजनीकांत का चित्र देखकर उसे मालूम

होता है कि इस चित्र का आधार कोई साकार व्यक्ति है। चंद्रकला उसे चाहती नहीं इस बात का गम कतिपय भी नहीं है। किंतु उसे इस बात पर शक होता है कि मुरारीलाल ने अपना समस्त वेतन उसके लिए भेज दिया है, अवश्य उसके पीछे कोई राज छुपा हुआ है, जिससे इस बात का पता चल सकता है, कि उसके पिता ने किन कारणों से बाध्य होकर आत्महत्या की। उसकी आंतरात्मा की दारूण व्यथा तब तक समाप्त नहीं होती जब तक उसे इस बात का पता चले। इसी मध्य कुछ आदमी घायल रजनीकांत को लिये हुये प्रवेश करते हैं। उसका सिर फट गया है और वह चंद्रकला की ओर देखता है। यही नाटक का प्रथम अंक समाप्त होता है।

द्वितीय अंक :-

दूसरे अंक का प्रारंभ मनोज और मनोरमा के वार्तालाप से होता है। दोनों एक दूसरे को चाहते हैं, किंतु मनोरमा उससे शादी करना चाहती। वह कहती है- "मैं तुम्हें चाहती हूँ ... तुम्हारे साथ एक प्रकार की आत्मीयता का अनुभव करती हूँ ... लेकिन तुम जिस मोह में पड़ गये हो ... वह तो भयंकर है।"[7] अप्रत्यक्ष रूप से मुरारीलाल मनोरमा के प्रति आकर्षित है। डा. कर्णसिंह भाटीजी मनोरमा के बारे में लिखते हैं - "समस्त पुरूष जाति उसे भिक्षुकों की तरह प्रतीत होती है, जो नारी के वासना के तुकडे के लिए अंतर की विवशता में अस्तित्व रखते हैं। मनोरमा विधवा है यह उसके जीवन का यथार्थ सत्य है। वह किसके साथ अपने जीवन को आबद्ध करें मुरारीलाल या मनोजशंकर?"[8] मनोरमा मनोज से कहती है - "मैं तुम्हें अपना दुल्हा तो नहीं बना सकती लेकिन प्रेमी बना लूंगी।"[9] इस तरह वह मनोज को प्रेमी के रूप में देखना चाहती है, पति के रूप में नहीं। मनोरमा विधवा-विवाह को समाज की सबसे बड़ा दूषण समझती है, जिससे वैधव्य कभी मिट नहीं सकता, उल्टे तलाक आदि की नई समस्याएँ उत्पन्न होंगी। इसे बाद मनोरमा स्पष्ट करती है कि चंद्रकला इस बात से अभिज्ञ है कि रजनीकांत विवाहित है, फिर भी चंद्रकला ने अपनी रोमानी भावना में खुद के व्यक्तित्व को डुबो दिया है। ऐसी स्थिति में चंद्रकला का विवाह व्यभिचार होगा, क्योंकि मानसिक व्यभिचार शारीरिक व्यभिचार से भयंकर होता है। मनोरमा के शब्दों में मिश्रजी लिखते हैं - "पुरूष का सबसे बड़ा रोग स्त्री है और स्त्री का सबसे बड़ा रोग है पुरूष। यह रोग तो

मनुष्यता का है और शायद मनुष्यता के विकास के साथ-साथ इसका भी विकास हुआ ... ।"[10] मनोरमा सामाजिक रेखाओं के कारण अपने जीवन के प्रेम को आदर्श में बदल देना चाहती है। शारीरिक संबंधों की अपेक्षा अंतरात्मा के संबंधों को महत्व देती है। वह वैधव्य का अनुभव इसलिए नहीं करती कि जो मिला ही नहीं उस अभाव का दुःख क्या हो सकता है। मनोज भी मनोरमा के साथ जीवनभर अविवाहित रहना चाहता है। मुरारीलाल के द्वारा मनोज प्रेरित होकर चंद्रकला के पास जाता है। वह चंद्रकला की उपेक्षा करता है। वास्तव में वह अपनी परिस्थिति पर झुंजलाता है। वह स्वयं को आत्मघाती पिता का पुत्र मानता है। उसके पिता ने किस कारण आत्महत्या की यह बोझ उसे सहा नहीं जाता। वह कहता है - "यह गुप्त बोझ मेरी आत्मा को दबाये रहेगा ... इस जन्म में, दुसरे जन्म में, तिसरे जन्म में।"[11] इसी बोझ ने उसका अबोध भोलापन, हँसी का कंपन और सौंदर्याकर्षण छीन लिया, जिसे चंद्रकला ने रजनीकांत में देखकर अपने हृदय को समर्पित कर दिया था। इसलिए मनोज प्रेमाकर्षण को महत्व देता है। उसकी इस अवस्था को देखकर मुरारीलाल दुःखी हो जाते हैं। दस वर्ष तक मनोज के साथ सबकुछ करने के उपरांत भी मनोज ने उनकी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। किंतु मनोज की मुरारीलाल से पैसे लेने की या रजनीकांत की हत्या की जाय यह बिलकुल इच्छा नहीं थी, जिससे वह विलायत जा सके। वह तो इस बात को जानने के लिए व्याकुल है कि उसके पिता मुरारीलाल के घनिष्ठ मित्र थे। फिर भी उनकी आत्महत्या का रहस्य आज तक उसे बता न सके, बल्कि उस पर एहसान करते रहे, जिसके लिए वह मुरारीलाल को पिस्तोल की धमकी देता है। इसके उपरांत चंद्रकला की स्थिति बिलकुल ठिक नहीं है। डाक्टर की अपेक्षा मनोज स्वयं चंद्रकला को ठिक करना चाहता है, क्यों कि उसे मत से चंद्रकला का रोग शारीरिक नहीं मानसिक है। वह चंद्रकला के पास जाकर उससे समस्त विरोधों को मिटाते हुये प्राकृतिक वातावरण में घूमने का निवेदन करता है। चंद्रकला भीतर कपडे पहनने के लिए जाती है। मनोज और मनोरमा का वार्तालाप पुनः प्रारंभ हो जाता है। मनोरमा के मत से पुरूष के लिए स्त्री को प्रायश्चित करना पडता है। उसके द्वारा निर्मित रजनीकांत के चित्र को वह अपनी कला का अंतिम अध्याय कहती है। उसका कहना है विधवा विवाह से वैधव्य नहीं मिटेगा, बल्कि तलाक की समस्या निर्माण होगी। वह उपभोग को सुख नहीं मानती, बल्कि जीवन

का आदर्श सामंजस्य में मानती है। मनोरमा नारी जीवन का परम लक्ष्य त्याग को मानती है। वह कहती हैं - "उसके भीतर संकल्प है, साधना है, त्याग और तपस्या है ... यही विधवा का आदर्श है और यह आदर्श तुम्हारे समाज के लिए गौरव की चीज है।"[12] वह मनोज से चंद्रकला को क्षमा करने का निवेदन करती है। फिर मनोज और चंद्रकला दोनों घुमने जाते हैं। मुरारीलाल मनोरमा के इस कार्य की प्रशंसा करते हैं। मनोरमा के प्रस्थान के उपरांत माहिरअली प्रवेश करता है और मुरारीलाल से रजनीकांत बच जाने की सूचना देते हुए बताता है कि हरनंदन सिंह ने चालीस हजार का प्रबंध कर लिया है। माहिरअली ये रूपये नहीं चाहता, किंतु मुरारीलाल उसे स्वीकार कर लेने का आदेश देते हैं। यहीं नाटक का दूसरा अंक समाप्त होता है।

तृतीय अंक :-

नाटक के तीसरे अंक में रजनीकांत की बिगडती हुयी तबियत से मनोरमा, चंद्रकला एवं मुरारीलाल अत्यंत शंकित हैं। रजनीकांत की स्थिति भयंकर हो जाने से माहिरअली इस प्रलय रात में डरावना सपना देख रहा है। चंद्रकला के चले जाने के बाद इसी समय मनोजशंकर माहिरअली से पिता की आत्महत्या के रहस्य का पर्दा खोल देता है। मनोरमा का समझोता नहीं हो सकता। श्रृंगार वेश में चंद्रकला प्रवेश करती है। चंद्रकला रजनीकांत की हालत देख अत्यंत द्रवित हो उठती है और भावुकता के आवेग में अस्पताल जाकर बेहोश रजनीकांत के हाथ से अपनी माँग में सिंदूर भर लेती है। यही उसने अपनी सिंदूर की होली खेली है। चंद्रकला कहती है - "इस में क्या है? मेरा प्रेमी वहाँ था ... तुम जानती हो। यह मेरी सुहागरात है ... कितनी सूनी ... लेकिन कितनी व्यापक। इसका अंत नहीं है। मेरा पुरूष मुझे अपनी गुलामी में न रख सका ... मुझे सदैव के लिए स्वतंत्र कर गया। देखती नहीं हो कैसी सिंदूर की होली खेली गयी है?"[13] इस तरह रजनीकांत के मृत्यु के उपरांत चंद्रकला वैधव्य के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करती है। मनोरमा की मजबूरी प्रारंभ में ही मानसिक हो गयी। इसी समय मुरारीलाल आकर चंद्रकला को अकेले अस्पताल में जाने पर आलोचना करता है। उन्हें रजनीकांत की मृत्यु का दुःख है। उन्हें इस बात की अत्यंत व्यथा है कि रजनीकांत अंतिम समय में अपनी मृत्यु के

लिए किसी विशेष व्यक्ति का नाम नहीं लिया। रजनीकांत के शब्दों में "नाम बतलाना मैं नहीं चाहता। मेरे परिवार में केवल दो स्त्रियाँ हैं ... कोई बच्चा भी नहीं है। मेरे परिवार की सारी आशाएँ मेरे साथ जा रही हैं। मैं नहीं चाहता कि दूसरों की आशाएँ भी अपने साथ लेता जाउँ।"[14] मृत्यू के पूर्व तक और मृत्यु के बाद भी रजनीकांत के मुख पर मुस्कान थी।

मनोज और माहिरअली प्रवेश करते हैं। मनोज के कथन में विदित होता है मुरारीलाल ही उसके पिता की मृत्यु का कारण है। केवल आठ हजार रुपयों की खातिर उसके पिता को मरवाकर उसने एक मोटर ली और एक बंगला बनवाया। मुरारीलाल इस बात को स्वीकार कर लेता है। इसी घटना का प्रायश्चित करने के लिए वह मनोज और चंद्रकला का संबंध प्रस्थापित करने का प्रयास करता है। अपनी सारी संपत्ति मनोज को सौंपना चाहता है, पर मनोज इसे अस्वीकार करता है। मनोज से विवाह का प्रस्ताव चंद्रकला भी अस्वीकार कर देती है। उसके मन में मनोज ने अपने पिता की हत्या का बदला चंद्रकला से लिया है, जिसके कारण चंद्रकला ने अपने माथे पर सिंदूर लगाकर पचास हजार रुपयों का प्रायश्चित किया है और जीवनभर अविवाहित रहकर मानसिक वैधव्य में जीवन-यापन करने में ही अपने जीवन का श्रेय समझती है। माहिरअली इस वर्ष से रखे बोझ को अपने दिल से उतार कर हल्का एवं शांति का अनुभव करता है। मनोज भी आत्मशांति का अनुभव करता है। चंद्रकला घर छोड जाने का निश्चय करती है। मनोरमा सामाजिक रेखाओं में आबद्ध रहकर जीवन निर्वाह करने की इच्छा रखती है। नाटक के अंत में मुरारीलाल अकेला तथा असहाय हो जाते हैं और सब उसे छोडकर जाने का निश्चय कर चुके हैं।

इस तरह संपूर्ण समस्याओं के हल में शांतिपूर्ण वातावरण में नाटक का अंत हो जाता हैं।

<u>कथावस्तु विवेचन :-</u>

इस प्रकार "सिंदूर की होली" नाटक में समस्याओं को प्रथम उपस्थित किया है और बाद में उसकी व्याख्या की है। अंत में उसका समाधान बौद्धिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

नाटक के प्रथम अंक में मुरारीलाल का नैतिक पतन, उसके कारण रजनीकांत की हत्या की सूचना, रिश्वत खोरी, मनोजशंकर की मानसिक विकृति, चंद्रकला की रजनीकांत के प्रति आसक्ति एवं बाल-विधवा मनोरमा से निर्मित रजनीकांत का चित्र आदि घटना ओं की अभिव्यक्ति मिलती है।

नाटक के दूसरे अंक में मनोज और मनोरमा एक दूसरे की ओर आकर्षित हैं, इन दोनों का वार्तालाप, मुरारीलाल मनोरमा के प्रति आकर्षित है, चंद्रकला की बीमारी, मनोरमा का आदर्श, चंद्रकला और मनोज का रिश्ता बनाने की कोशिश, मनोजशंकर पिता की आत्महत्या से आत्मपीड़ित है, डाक्टर चिकित्सा- प्रणाली आदि घटनाओं का चित्रण इसमें अंकित हुआ है।

नाटक के तीसरे अंक में सभी व्यक्ति के आंतरद्वंद्व का जो संघर्ष है उसकी गति समाप्ति की ओर दिखाई देती है। इसमें चंद्रकला रजनीकांत के हाथों से सिंदूर भरवाकर वैधव्य को प्राप्त करती है, तो मनोरमा समाज से स्वीकृत वैधव्य का स्वीकार करती है, रजनीकांत की मृत्यू की सूचना दी गई है। माहिरअली मनोजशंकर को उसकी पिता की आत्महत्या का रहस्य बता देता है और खुद को हल्कासा महसूस करता है। अंत में मुरारीलाल असहाय हो जाते हैं। नाटक के सभी पात्र उनकी ओर से मुख मोड लेते हैं। इस तरह उन्हें "कर्म प्रतिफल न्याय" मिल जाता है।

इस नाटक में चिरंतन नारित्व एवं विवाह की समस्या का प्रमुख चित्रण हुआ है। "मिश्रजी के इन नाटकों की कथावस्तु का स्वरूप आज के यथार्थ के परिवेश को लिए हुए हैं और उसी संदर्भ में आधुनिक जीवन बोध से संबंधित आधुनिक समस्याओं और प्रश्नों को उठाकर लेखक ने समाधान प्रस्तुत किये हैं तथा अपने तर्कों को बौद्धिक अभिव्यक्ति दी है।"[15] मिश्रजी भारतीय संस्कृति के उपासक आदर्शवादी नाटककार है। उनमें जीवन के प्रति आस्था तथा परिस्थितियों से समझौता करने की प्रवृत्ति दिखायी देती है। वस्तुतः 'सिंदूर की होली' का कथावस्तु सुनियोजित,सुगठित तथा सुव्यवस्थित है। घटनायें, कार्य-कारण श्रृंखला बद्ध होने से कथा में गति आ गयी है। कथा का विकास स्वाभाविक तथा तर्कसंगत रूप में हुआ है।

समस्याएँ :-

'सिंदूर की होली' समस्या प्रधान एक प्रौढ नाटक है। इसमें व्यक्तिगत एवं समाजगत दोनों प्रकार की समस्याओं को उभारा गया है। व्यक्तिगत समस्याओं के अंतर्गत यौन-समस्या, स्वच्छंद प्रेम की समस्या, विधवा-विवाह की समस्या और चिरंतन नारीत्व की समस्या का चित्रण हैं। सामाजिक समस्या के अंतर्गत जमीनदारों से उत्पन्न पारस्परिक कलह, अधिकारियों का रिश्वत लेना, न्याय की समस्या और अर्थ लोलुपता की समस्या आदि को नाटककार ने लिया है। वे सभी समस्याएँ वर्तमान देश-काल की ज्वलंत समस्याएँ हैं। इन सभी समस्याओं का समाधान मिश्रजी ने बुद्धिवादी स्तर पर किया है।

अतः "सिंदूर की होली" की समस्याएँ निम्न प्रकार से हैं, जिसका विश्लेषण विस्तृत रूप में किया गया हैं :-

1· पट्टीदारों के कलह की समस्या
2· कानून द्वारा सुरक्षा की समस्या
3· चिरंतन नारीत्व की समस्या
4· विधवा विवाह की समस्या
5· विवाह की समस्या
6· स्वच्छंद प्रेम की समस्या
7· काम समस्या
8· अंतरद्वंद अथवा मानसिक संघर्ष की समस्या
9· रोग के उपचार की समस्या
10· बुद्धिवादी की समस्या
11· भावुकता की समस्या
12· अर्थलोलुपता की समस्या
13· रिश्वत खोरी की समस्या
14· कला की समस्या

1· **पट्टीदारों के कलह की समस्या :-**

नाटक के आरंभ में ही सर्व प्रथम पट्टीदारों के कलह की समस्या उभरती है, जो पारिवारिक स्तर पर गंभीर स्वरूप धारण करती है। धन का गर्व भगवंतसिंह को होने से समाज में अपनी बराबरी करतु हुए वह किसी को देख नहीं सकता था। छोटों को अपने सामने किसी प्रकार का तर्क न करने देता या उँचा दिखाना आदि बातें सामंती विचारधारा के रूप में भगवंतसिंह में दिखाई देती हैं। जमीनदारी से उत्पन्न कलह और हत्याओं की समस्या को नाटककार ने जमीनदार भगवंतसिंह और रजनीकांत के माध्यम से प्रस्तुत किया है। भगवंतसिंह की अत्याचारी प्रवृत्ति के बारे में मुरारीलाल कहते हैं - "मैं खूब जानता हूँ, भगवंत बडा ज़ालिम है। लाखों रूपयें, रैयत को लूटकर जमा कर लिए हैं। अभी तक आनरेरी मॅजिस्ट्रेट था ···· इस साल रायसाहब भी हो गया है। उधर का सारा इलाका उनके रोब में है। जो चाहेगा, कर लेगा।"[16]

इससे स्पष्ट होता है कि रायसाहब भगवंतसिंह समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है। अपने भतीजे रजनीकांत के स्वतंत्र विचारों एवं क्रांतिकारी व्यवहारों को अपने लिए बाधक जनक समझता है। रजनीकांत उसके सामने बराबर के ठाठ से रहता है। लगान-बंदी कर रहा है। बाजारों में कपडे की होली जलाता है। कहार उसके यहाँ भी पानी भरे और हली-हुकमत उसे भी मिले यह बराबरी करने जैसा है। इसलिए एक ही जंगल में दो शेर का रहना भगवंतसिंह को चूभता है। वह कहता है - "पट्टीदार और दाल तो गलाने की चीजें होती हैं। दाल गल जाने पर मीठी होती है और पट्टीदार गल जाने पर काबू में रहता है। अपनी जिंदगी में दो लाख रूपये की जमीन मोल ली मैंने और एक लाख रूपयें नकद जमा किया, उसकी मजाल कि वह मेर जबाब दे?"[17] इसलिए भगवंतसिंह रजनीकांत की हत्या करने का दृढ निश्चय करता है और इसके हिस्से पर कब्जा करना चाहता है। तभी तो वह डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल को रिश्वत देता है, ताकि वह कानून से छूट सके। इसी में वह अपनी इज्जत एवं प्रतिष्ठा समझता है।

इस प्रकार जमीनदारी के शोषण और अत्याचार की समस्या को नाटककार ने यथार्थ रूप से चित्रित किया है। जिसमें पट्टीदारों की कलहा की समस्या उभर आती है।

2· **कानून द्वारा सुरक्षा की समस्या :-**

"सिंदूर की होली" समस्या नाटक में यह दिखलाया गया है कि किसतरह रिश्वत देकर न्याय का गला घोट रखा है। भगवंतसिंह ने मुरारीलाल के पचास हजार रूपयें रजनीकांत की हत्या करने के लिए दिये हैं। रजनीकांत की सहायता करनेवाला कोई नहीं है। यह समस्या और भी भयानक उस समय लगती है जब हम देखते हैं कि वह रजनीकांत न्यायालय में आकर मुरारीलाल को स्पष्ट कह देता है कि उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व न्यायालय पर है।

इस तरह लक्ष्मीनारायण मिश्रजी ने आज की वर्तमान समस्या को प्रस्तुत किया है। आज का कानून देखकर भी देख नहीं सकता। अपने आँखों पर झूठ की पट्टी बाँध लेता है। कानून सबूत के बलपर न्याय करता है, तो कानून के रखवाले धन के बल पर। इन दोनों के बीच बेकसूर रजनीकांत जैसा युवक मारा जाता है। सजा उसको नहीं दी जाती जो अपराध करता है, बल्कि सज़ा तो केवल उसको होती है, जो अपराध छिपाना नहीं जानता। बस ··· यही कानून है। कानून के रक्षक डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल भक्षक के रूप में पेश आते हैं। उन्हें रजनीकांत की हत्या की चिंता नहीं है, बल्कि धन की लालसा दिखायी देती है। वे कहते हैं - "अगर वह मारा गया और मैं चाहूँ भी कि इसे सज़ा दूँ तो सबूत नहीं मिलेगा। ऐसी हालत में मेरी तबीयत, मेरी अंतरआत्मा कहेगी इसे दंड देने के लिए और कानून कहेगा छोड देने के लिए। मुझे मजबूर होकर कानून की बात माननी पडेगी और वह छूट जायेगा। हम लोग मनुष्य और उसके अधिकार की रक्षा के लिए कुर्सी पर नहीं बैठते··· हम लोगों का तो काम है केवल कानून की रक्षा करना यही बुराई है और इसीलिए यह सब हो रहा है। उससे रूपये लेकर मैंने कोई बुराई नहीं की।"[18]

भगवंतसिंह ने रजनीकांत की हत्या का साहस ही इसलिए किया है, क्योंकि रूपयों के बलपर आज न्याय भी खरीदा जा सकता है। आज की न्याय प्रणाली सबूतों पर आधारित है और गवाह तो रूपयों के बलपर बिक जाते हैं। संसार में भलाई और बुराई का भाव अब नहीं रहा है। जिस प्रकार मुरारीलाल को पैसे देकर भगवंतसिंह कानून के पंजों से छूटता है उसी प्रकार वह अन्य गवाहों को भी खरीद सकता है।

उसका कुछ भी कानून बिगाड़ नही सकता। इस प्रकार आज का कानून देखकर भी अंधा हुआ है। अतः इस समस्या की वजह से और भी कितनी ही समस्याओं का निर्माण हो जाता है। उदाहरण के तौरपर पट्टीदारों के कलह की समस्या ही न्याय की समस्या को जन्म देती है। भगवंतसिंह के उदाहरण से नाटककार ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि आज कानून के द्वारा निर्दोष मनुष्य की रक्षा नहीं हो सकती।

3. चिरंतन नारीत्व की समस्या :-

"सिंदूर की होली" की प्रधान समस्या चिरंतन नारीत्व की है। "चिरंतन नारीत्व की समस्या अर्थात नारी की प्रकृति का वास्तविक स्वरूप, स्वच्छंद प्रेम, जिसमे नारी स्वातंत्र्य की दुहाई दी जाती है अथवा समाजानुमोदित मर्यादित विवाह, जिसमें सामाजिक मर्यादाओं के अनुरूप नारी को अपने मन की अपेक्षा समाज की इच्छा के अनुकूल समर्पण करना पडता है।"[19] सच तो यह है कि नारी का क्षेत्र सिर्फ रसोई घर ही नहीं हो सकता। पाश्चात्य राष्ट्रों में तो नारी को पूर्ण स्वतंत्रता दी गई है। परंतु भारतीय समाज में यह स्वतंत्रता नहीं है। इस प्रकार मिश्रजी ने इब्सन और शा के नाटकों के आधार पर अपने नाटकों में नारी समस्या को प्रस्तुत किया है। उनके नाटकों के नारीपात्र बुद्धिवादीनी दिखाई देते हैं। "मिश्रजी ने अपने नाट्य-प्रयोगों के द्वारा हिन्दी नाट्य की सामाजिक चेतना को एक नवीन स्फूर्ति प्रदान की और समाज के बंधनों में जखडी हुई नारी के वैवाहिक जीवन, उसकी दयनीय दशा, स्वच्छंद प्रेम एवं आदर्श प्रेम, वैधव्य समस्या, चिरंतन नारीत्व की समस्या का विवेचन करते हुए इसका पर्यवसान नारी स्वातंत्र्य में किया।"[20] आज के वर्तमान युग की प्रमुख समस्या है नारी-स्वातंत्र्य। आज की आधुनिक नारी शिक्षित एवं बुद्धिवादी है। प्रारंभ से ही पुरूष ने नारी को दासता में रखकर उसपर अत्याचार किए हैं। आज की नारी इससे छुटकारा पाकर स्वतंत्रता के वातावरण में जीवन निर्वाह करना चाहती है। इसलिए चंद्रकला कहती है - "हमारा ... स्त्रियों का निर्माण भी उन्हीं उपकरणों से हुआ है जिनसे पुरूष का हुआ है, लेकिन तब भी हम पुरूषों की गुलामी में सदैव से चली आ रही हैं। हमारे भीतर कभी संदेह नहीं पैदा हुआ, ऐसा क्यों है? पुरूष की चार हाथ की सेज़ में ही हमारा संसार सीमित है। पुरूष ने स्त्री की कमजोरी को उसका गुण बना दिया और वह उसी प्रशंसा में सदैव के लिए आत्मसमर्पण कर

बैठी। दूसरों की रक्षा में हम अपनी रक्षा नहीं कर सकी।"[21]

मिश्रजी ने आधुनिक नारी की समस्या को अधिक सूक्ष्मता से चित्रित किया है। इसमें नारी जीवन के दो पहलू दिखाई पडते हैं। एक में नारी के स्वच्छंद प्रेम को महत्व दिया जाता है और दूसरे में उसे समाज की इच्छा के अनुकूल अपनी भावनाओं की तिलांजली देनी पडती है। इस समस्या का विवेचन करने के लिए नाटककार ने दो पात्रों की सृष्टि की है। मनोरमा और चंद्रकला इस नाटक के आधुनिक नारी-पात्र हैं। मनोरमा और चंद्रकला दोनों उच्च शिक्षित नारी होकर भी अंधश्रद्धा से आक्रांत हैं। मनोरमा की दृष्टि से समाज का आदर्श श्रेष्ठ है तो चंद्रकला नारी के स्वच्छंद प्रेम एवं यथार्थ को महत्व देती है। मनोरमा वैयक्तिक अनुभूति की अपेक्षा संयम से सामाजिक मर्यादाओं को महत्व देती है। चंद्रकला सामाजिक मर्यादा की उपेक्षा कर स्वयं की अनुभूति को महत्व देती है। इस तरह एक रूढ़िवादी तो दूसरी उसकी उपेक्षा करती है। मनोरमा में व्यक्तिगत अनुभूति का दमन है तो चंद्रकला में उसकी पराकाष्ठा। एक आदर्श को अपनाती है तो दूसरी यथार्थ को।

मनोरमा बाल विधवा है। आज बीस साल बीत गये उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। वह समाज के आदर्श पर चलना चाहती है। वह जानती है कि विधवा विवाह करने से समस्या मिट नहीं सकती बल्कि तलाक की समस्या निर्माण होती है। मनोरमा की दृष्टि से पुरूष और स्त्री एक दूसरे के रोग के समान हैं। नारी ही कभी माँ के रूप में, बहन के रूप में तथा पत्नी के रूप में अपना सर्वस्व त्याग देती है। वह त्याग और करूण की मूर्ति है। सदैव उसे पुरूष की गुलामी सहनी पडती है। तभी तो मनोरमा कहती है - "पुरूष के लिए प्रायश्चित करना पडता है स्त्री को। स्त्री जीवन का सबसे सुंदर और सबसे कठोर सत्य यही है। स्त्री इसीलिए दुःखी है और पुरूष इसी को स्त्री का अधिकार समझता है और इसीलिए पुरूष और स्त्री के अधिकारों की अलग-अलग पैमाइश हो रही है।"[22]

चंद्रकला प्रथम दर्शन में ही रजनीकांत से एकनिष्ठ हो जाती है। और उसके बेहोश स्थिति में अपने सिर में सिंदूर भर लेती है। स्वयं वैधव्य को धारण करके यथार्थ को महत्व देती है। वह कहती है - "मेरे भीतर आज चिरंतन नारीत्व

का उदय हुआ है। मेरी चेतना आज मेरे चारों ओर फैल रही है और तुम कहती हो मुझे उन्माद हो रहा है। मैं आज अपने पैरों पर खडी हो रही हूँ··· मुझे किसी दूसरे पुरूष की सहायता की जरूरत नहीं। रोटी और वस्त्र ··· मेरी शिक्षा इतनी हो चुकी है कि मैं अपना, प्रबंध कर लूँगी। कोई चिंता नहीं है। मेरा वैधव्य अमर रहे।"[23] इस तरह आधुनिक नारी एक ओर पुरूष की लोलुपता से घृणा करती है, वहाँ दूसरी दृष्टि और प्रथम दर्शन में ही अनुरक्त हो जाती है। इस प्रकार वह उतनी ही निर्बल और भावुक लगती है जैसी कि आज से सौ वर्ष पहले थी। इस नाटक के दोनों नारी-पात्र मनोरमा और चंद्रकला भावुकता से बुद्धिवाद का वरण करती है। चंद्रकला की दृष्टि से मनोरमा की मजबूरी पहले सामाजिक और फिर मानसिक हुई । लेकिन चंद्रकला की मजबूरी प्रारंभ से ही मानसिक हुई।

मिश्रजी अपने नाटकों में घटनाओं का विस्तार इस प्रकार करते हैं कि नारी के भीतर जो कुछ भी है - इच्छा, द्वेष, ईर्ष्या, प्रेम, वासना, त्याग, विवशता आदि अंत में प्रकट हो जाता है। इसी तरह मनोरमा एवं चंद्रकला की समस्या को वे सुलझाना चाहते हैं, किंतु स्वयं उसमे उलझ जाते हैं। इब्सन और शॉ के नारी पात्र रोमांस को छोडकर व्यावहारिक जीवन अपनाते हैं, किंतु मिश्रजी के पात्र परिस्थिति देखकर उसके विमुख हो जाते हैं। जैसे कि मनोरमा और चंद्रकला। चंद्रकला के पिता की इच्छा में चंद्रकला के विवाह के बारे में जो मन में प्रतिबिंबित है उसके विरोध में चंद्रकला विद्रोह करती है। किंतु मिश्रजी ने उसका यह विद्रोही रूप भारतीयता के साँचे में ढाल दिया है। इस प्रकार उन्होंने पाश्चात्य बौद्धिकता के आवरण में भारतीय आत्मा दर्शायी गयी है। मिश्रजी के सभी समस्या नाटकों के नारी-पात्र आशादेवी, मालती, अशगरी , मनोरमा और चंद्रकला आदि के चिरंतन नारीत्व की समस्या पर प्रकाश डाला है। सभी नारी पात्रों में हृदय और बुद्धि का द्वंद मिलता है और उनकी चिरंतन नारीत्व की भावना भी समान लगती है। उन नारी-पात्रों के बारे में पाठक या दर्शक के मन में विनय की भावना उत्पन्न हो जाती है। "सन्यासी" नाटक के मालती और किरणमयी नारी पात्रों पर प्रकाश डाला है। समाज में नारी को अपने व्यक्तित्व और विवाह को संबंध में परिपूर्ण सोचने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार में नारी-समस्या बड़ी जटिल है।

इसे सब जानकर भी अंजान हो जाते हैं। नारी की ओर देखने की पुरूष की वासना की क्षुद्र प्रवृत्तियाँ है। इसी कारण नारी को महत्व नहीं मिलता। आज की नारी आधुनिक और शिक्षित होते हुए भी स्वतंत्र नहीं है। फिर भी प्रकृति और प्रवृत्ति की दृष्टि से इतना भिन्न होने पर भी मनोरमा और चंद्रकला ने एक महत्वपूर्ण समस्या का समाधान समान रूप से प्रस्तुत किया है। समाज में स्त्रियों को रोटी और कपड़े के लिए पुरूष पर निर्भर होना पडता है लेकिन मनोरमा और चंद्रकला में यह मजबूरी नहीं है। उनकी शिक्षा इस मिठ्ठी में उन्हें अपने पैरों पर खडी होने के योग्य बनाती है। वह दोनों भी किसी पर निर्भर नहीं होना चाहती। इस तरह मनोरमा और चंद्रकला अपने चिरंतन नारीत्व के लिए एक बार वैधव्य का वरण करने के उपरांत पुनः विवाह नहीं करना चाहती। चंद्रकला अपने स्थायी प्रेम के लिए तो मनोरमा सामाजिक आदर्श को शाश्वत रखने के लिए स्वयं अपना-अपना मार्ग प्रशस्त करती है।

4· **विधवा विवाह की समस्या :-**

मिश्रजीने नारी जीवन की दूसरी महत्वपूर्ण समस्या विधवा विवाह का विवेचन किया है। आधुनिक भारतीय समाज की यह महत्वपूर्ण समस्या है। भारतीय समाज विधवा का होना उसके लिए घातक मानता है। किंतु विधवा विवाह से वैधव्य नहीं मिट सकता । फिर तलाक की समस्या का आगमन होगा। इन दोनों समस्याओं का समर्थन मिश्रजी ने किया है।

"सिंदूर की होली" नाटक के नारी-पात्र मनोरमा और चंद्रकला के वैधव्य का विवेचन मिश्रजी ने अलग ढंग से प्रस्तुत किया है। दोनों में स्वच्छंदता और भावुकता का प्राधान्य है, किंतु दोनों के विचार वर्तमान युग के लिए महत्वहीन है। चंद्रकला का प्रथम दर्शन में ही एकनिष्ठ प्रेम हो जाता है और वह वैधव्य का वरण कर के जीने के लिए नयी दिशा बदल देती है। किंतु समाज को उसका वैधव्य स्वीकार नहीं है। मनोरमा चंद्रकला से कहती है - "तुम्हारा वैधव्य तुम्हारा है, वह तुम्हारा स्वर्ग हो सकता है, लेकिन उसमें समाज की संसार की क्या आशा है? वेदमंत्र, हवन, शंखध्वनि, जिनके साथ तुम्हारा समझोता नहीं हो सकता ··· सामाजिक संस्कारों के लिए मुहर

का काम करते है।"[24] इस प्रकार इस नाटक के नारी पात्र अपना आदर्श और यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। मनोरमा तो बालविधवा है किंतु उसे विधवा होने का दुःख नहीं है। उसको लगता है जिस वस्तु का अनुभव ही नहीं हुआ उसके अभाव का दुःख क्या? वह विधवा विवाह का समर्थन नहीं करना चाहती। क्योंकि उसको मालुम है कि विधवा विवाह करने से वैधव्य नहीं मिट सकता। समाज इस आग को बुझा नहीं सकता। मनोरमा की धारणा है कि विधवाओं के उद्धार के नाम पर यह आंदोलन पुरूषोंने उठाया है, अपने उद्धार के लिए। वह पुरूष जाति को लांछित करती है "क्षमा कीजिएगा, पुरूष आँख के लोलुप होते हैं, विशेषतः स्त्रियों के संबंध में, मृत्यु शैय्या पर भी सुंदर स्त्री, इनके लिए सबसे बडा लोभ हो जाती है।"[25] मिश्रजी लिखते हैं मनोरमा के शब्दों में पुरूष जाति भिक्षुको की तरह हो गयी है। जहाँ भिक्षुकों में एक-एक टूकड़े के लिए दंद चलता है ... वे सभी भूखे रहते हैं... ज्ञान के लिए वहाँ लेशमात्र जगह नही है। उन्हीं भिक्षुकों की तरह पुरूष जाति भी हो गयी है। एक ओर वह विधवा जीवन का आदर्श स्थापित करना चाहती है, जिससे सामाजिक मान्यता प्राप्त हो। वह मनोज से कहती है -"मैं तुम्हे अपना दूल्हा तो नहीं बना सकती लेकिन प्रेमी बना लूँगी।"[26] इस तरह वह मनोज की ओर आकर्षित होते हुये भी उसे प्रेमी के रूप में स्वीकार करती है, न कि पति के रूप में। वह जानती है कि शारीरिक व्यभिचार से भी मानसिक व्यभिचार भयानक होता है। अपनी कमजोरी को वह सामाजिक आदर्श में छिपा देना चाहती है। इस तरह मनोरमा विधवा विवाह समर्थन करने की बजाय उसका तीव्र शब्दों में विरोध करती है। उसका मत है कि विधवा विवाह करना याने कि शारीीक भूख को अधिक महत्व देना तथा प्रेम के अस्तित्व को अस्वीकार करना।

इस तरह विधवा विवाह द्वारा वैधव्य तो मिट जाएगा किंतु तलाक जैसी नयी समस्याएँ बढ़ती जायेगी । और विश्वास के अभाव में जीवन भटकता रहेगा। वे दोनो समस्याएँ समाज के लिए कलंक है। नारी का वैधव्य एक साधना और तपस्या है, उसमें संयम और विश्वास ही है। विधवा का विवाह होने से यह आदर्श, विश्वास लुप्त हो जाएगा। मनोरमा मनोज से कहती है - "तुम्हारी समझ में विधवाएँ समाज के लिए कलंक है, मैं समझती हूँ, समाज की चेतना के लिए विधवाओं का होना

आवश्यक है। तुम जीवन का विशेषतः स्त्री के जीवन का दूसरा पहलू भी समझते हो ... देखते हो, उसके भीतर संकल्प है साधना है, त्याग और तपस्या है ... यही विधवा का आदर्श है और यह आदर्श तुम्हारे समाज के लिए गौरव की चीज है"[27] इस प्रकार मिश्रजी ने इस समस्या के सैद्धांतिक पक्ष का विश्लेषण तो किया है परंतु उसके व्यावहारिक पक्ष की पूर्ण रूप से उपेक्षा की है। सामाजिक जीवन में मनोरमा जैसी नारी का मिल जाना इतना आसान नहीं है।

मिश्रजी विवाह को एक सामाजिक व्यवस्था मानते हैं, इससे प्रेम अधिक घनिष्ठ एवं दृढ होता है। विधवा का संयम, साधना, त्याग और तपस्या अवश्य गर्व की वस्तु है, किंतु आदर्श के मृगजल में वह बहुत दिन तक नहीं रह सकती या काई पुरूष रह सकता है। यह आदर्शो का मृगजल तो जीवन को बिताने का सहारा मात्र है, कोरा दिखावा है। व्यक्ति को समाज के साथ कदम मिलाकर चलना पडता है। वह यश और कीर्ति की उपेक्षा नहीं कर पाता। नारी के लिए केवल प्रेम ही सत्य नहीं है, वह स्वाभिमानपूर्ण जीवन की आकांक्षा भी वह करती है। सामाजिक सम्मान के अभाव में वह कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकती। डा· भाटी इस बारें में लिखते है -"श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भारतीय नारी के त्याग और तपस्या की ही पुनरावृत्तियाँ मनोरमा के ही चरित्र में की है जो भारतीय रूढ़िवादी आदर्श का प्रतीक है। विधवा विवाह की अस्वीकृति का कारण मिश्रजी को भारतीय मोह मात्र है। किसी बौद्धिक तर्क की उत्पत्ति नहीं। नाटककार ने 'सिंदूर की होली' के इस परिप्रेक्ष्य में यथार्थवाद के प्रयोग की अपेक्षा आदर्शवाद के सिद्धांत का ही विवेचन किया है।"[28]

पुरूष नारी के त्याग की भावना की अपेक्षा रखता है किंतु वह नारी के लिए वैसी ही भावना रख सकता है? इसका उत्तर मिलेगा नहीं। मिश्रजी ने इस समस्या का बडी ही कुशलता से विवेचन किया है, जो अवश्य सराहनीय है। मरणासन्न रजनीकांत के हाथ से माँग में सिंदूर भरकर विवाहित बनने की स्थिति के विकास में प्रेम-विवाह-जन्य वैधव्य की समस्या को उभारना ही नाटककार का हेतू है। इस प्रकार नाटककार ने समस्या के विधेयात्मक एवं निषेधात्मक, दोनो पक्षों को तर्क

द्वारा स्पष्ट किया है। लेखक ने एक ओर विधवा-विवाह से उत्पन्न होनेवाली बुराईयों की ओर संकेत किया है, दूसरी ओर विधवा-विवाह के न होने पर समाज के सम्मुख नारी के त्याग, संयम समन्वित आदर्श रूप की प्रतिष्ठा की जायेगी, इसकी ओर दिशा-निर्देश किया है।

चंद्रकला का विवाह समाज की दृष्टि से सार्थक नहीं है। किंतु उसका यह वैधव्य चिरंतन रहेगा यह कह सकना नामुमकीन है। मनोरमा उसे समझाने की कोशिश करती है परंतु चंद्रकला अपने उद्देश्य से एक पल भी नहीं हट सकती। वस्तुतः मनोरमा और चंद्रकला का आजीवन वैधव्य स्वीकार करना उनकी शिक्षा दीक्षा पर भी निर्भर है। अतः भारतीय नारी अभी इतनी स्वावलंबी नहीं हो सकती है कि स्वयं अपना जीवन-निर्वाह कर सके। चंद्रकला का प्रेम-विवाह-जन्य वैधव्य भी केवल आवेश की उपज है।

इस तरह मिश्रजी ने आदर्श के रूप में मनोरमा का भी चित्रण किया है। "कला जीवन यापन के लिए" इस उक्ति के अनुसार मनोरमा चित्रकला में अपना मन बहलाती है। इस बारे में दुबेजी लिखते हैं - "वैधव्य का पालन करते हुए जीवनयापन करने का अच्छा तरीका 'सिंदूर की होली' में लक्ष्मीनारायण मिश्र ने दिया है। मनोरमा चित्रकला में अपना मन लगाकर समय काटा करती है।"[29] यह सत्य है कि कोई भी व्यक्ति अपने दुःखों को भूलाने के लिए कोई-न-कोई कला का सहारा आवश्य लेती है और इसी के सहारे अपना जीवन बीताती है।
इस तरह मिश्रजी ने एक आदर्श के रूप में तो दूसरा प्रेम के रूप में विधवा-विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया है। चंद्रकला सामाजिक मर्यादाओं की अवहेलना कर अपने मन की अनुभूति और भावावेश को महत्व देती है। मनोरमा सामाजिक रेखाओं में आबद्ध रहकर आदर्श स्थापित करना उचित समझती है।

5. विवाह की समस्या :-

मिश्रजी विवाह को एक सामाजिक व्यवस्था मानते हैं। इस में प्रेम के क्षेत्र में संदेह का उन्मूलन हो जाता है। इस सामाजिक बंधन के कारण फिसलने

का अवसर कम होता है। अतः प्रेम अधिक घनिष्ठ एवं दृढ होता है। इस बारे में इब्सन ने लिखा है - "यदि तुम विवाह करना चाहते हो तो प्रेम में मत पडो और यदि प्रेम करते हो तो प्रिय से अलग हो जाओ।"[30] इस तरह मिश्रजी ने इसी प्रणाली को अपने इस नाटक में अपनाया है। मिश्रजी पर पाश्चात्य लेखक इब्सन का प्रभाव ही पडा था। अतः मिश्रजी ने उनकी इसी प्रणाली को अपने नाटक में स्वीकारा है।

चंद्रकला के माध्यम से नाटककार ने परंपरागत् विवाह-पद्धति का विरोध किया है। चंद्रकला के पिता मुरारीलाल उसका विवाह मनोजशंकर से करना चाहते हैं, किंतु वह पिता के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर स्वतंत्र निर्णय लेती है। वह मरणासन्न रजनीकांत के हाथों से अपनी माँग भरवाकर स्वयं वैधव्य को गले लगाती है। वह परंपरागत विवाह का विरोध करती है। क्योंकि उन्होंने प्रथम-दर्शन में ही रजनीकांत से प्रेम किया था। यहाँ चंद्रकला के रूप में भारतीय आदर्श नारी का रूप दिखलाया गया है। चंद्रकला जैसी स्थिति व्यावहारिक रूप में नहीं दिखाई देती है। चंद्रकला जैसी नारी का चित्रण साहित्य में तो हमें आदर्श लगता है, परंतु वास्तविक जगत में इस का स्वीकार करना आसान नहीं है। इस प्रकार मिश्रजी ने चंद्रकला का चित्रण एक आदर्श नारी के रूप में किया है। वह परंपरागत विवाह का विरोध करती हुई कहती है - "विवाह तो मेरा भी हो गया। हजार-दो-हजार मंत्र और श्लोक न पढ़े गये। यही न? "[31] इस तरह चंद्रकला मानसिक वर्ग को सामाजिक रूढ़ियों और वैवाहिक बाहय् परंपराओं से श्रेष्ठ मानती है।

मनोरमा के माध्यम से मिश्रजी ने परंम्परा विवाह पद्धति को स्वीकार किया है। इस पद्धति से मनोरमा का विवाह 8 वर्ष की आयु में हुआ और 10 वर्ष की थी तब वह विधवा हो गयी। आज 18 वर्ष की युवती के रूप मे मुरारीलाल के यहाँ आश्रय पाती है। मुरारीलाल की वासनात्मक दृष्टि उसपर रही है। मनोजशंकर और मनोरमा एक दूसरे की ओर आकर्षित हैं। मनोरमा का विवाह सामाजिक तथा बाहय् विधान के नियोजन की गाथा है, इसे ही वह अपने वैधव्य को अपनी संस्कृति का

परम आदर्श मान बैठती है। इसीलिए तो वह मनोजशंकर को प्रेमी के रूप में स्वीकार करती है। यहाँ पर भी मिश्रजी ने आदर्श भारतीय नारी (प्रेमिका) के रूप में मनोरमा का चित्रण किया है। मनोरमा अपनी यह भावना स्पष्ट करती है - "अगर तुम मेरे प्रेम का अर्थ समझ सको ··· मुझे उसका अवसर दो। मैं तुम्हें अपना दूल्हा तो नहीं बना सकती लेकिन प्रेमी बना लूँगी।"[32] इस तरह मनोरमा मनोजशंकर को अपना प्रेमी बना लेती है। और यह प्रेम निष्कलंक है। वह दोनो एक साथ नही रह सकते। समाज की डर से वे विवाह नहीं कर पाते और प्रेम को आदर्श का रूप देने के लिए वह एक साथ भी नहीं रह पाते। मिश्रजी का भी मत है - युवा स्त्री और पुरूष मित्र की तरह एक साथ नहीं रह सकते क्योंकि उनका एक-साथ रहना आग और पानी को एक-साथ रहने जैसा दिखता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब मनोजशंकर मनोरमा के साथ अविवाहित रहने का निश्चय करता है तब मनोरमा कहती है - "कल्पना और भावुकता! मनोज बाबू! साहित्य की कल्पना में तो, कोई संदेह नहीं यह सुंदर चीज होगी ··· लेकिन जीवन की वास्तविकता में यह कितनी भयंकर!"[33] मनोरमा की दृष्टि में नारी केवल पुरूष की वासना का सौंदर्याकर्षण है। उसका मत यह है कि पुरूष और स्त्री एक दूसरे के रोग है।

इस तरह मनोरमा और चंद्रकला अपने वैधव्य को सार्थक करती है, जबकि उन विवाह में पति केवल नाम मात्र होता है और एक पल के लिए भी वे पति सुख से वंचित रह जाती हैं। मनोरमा विवाह के मूल में बाह्य् विधानों को प्रमुख मानती है, जो चंद्रकला समाज की स्वीकृति की अपेक्षा आत्मसमर्पण की भावनाओं एवं मानसिक वरण को श्रेष्ठ समझती है। इस तरह 'सिंदूर की होली' में मुख्य समस्या विवाह की है। मनोरमा एवं चंद्रकला के माध्यम से मिश्रजी ने हृदय और भावना का सुंदर समन्वय प्रस्थापित किया है। मिश्रजी ने पाश्चात्य संस्कृति को अपनाते हुए उन्होंने कहीं भी भारतीयता का त्याग नहीं किया। 'सिंदूर की होली' की मनोरमा और चंद्रकला शिक्षित होने के कारण पाश्चात्य संस्कृति का उनपर प्रभाव है। इसी कारण वह स्वच्छंद प्रेम करती है परंतु वह आदर्श भारतीय नारी भी दिखाई देती है, जिसके कारण वैधव्य धारण कर एक सामाजिक आदर्श स्थापित करती है।

इसी प्रकार लेखक ने विवाह और प्रेम को एक-दूसरे का पूरक न मानकर पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव से अलग-अलग स्थान दिया है। इस तरह नाटककार ने विवाह समस्या को प्रस्तुत करते हुए एक ओर सामाजिक आदर्श को महत्व दिया है, तो दूसरी ओर वैयक्तिक प्रेम-विवाह को अपनाया है।

6. **स्वच्छंद-प्रेम की समस्या :-**

लक्ष्मीनारायण मिश्रजी ने नारी-समस्या के प्रत्येक पहलू का सूक्ष्म अवलोकन किया है। 'सिंदूर की होली' में स्वच्छंद प्रेम के साथ में नैतिक पक्ष की भी रक्षा की है। चंद्रकला का प्रेम स्वच्छंद है। वह सामाजिक मर्यादाओं की पूर्णतः उपेक्षा कर स्वयं की अनुभूति को महत्व देती है। वह अपने प्रेम की खातिर मरणासन्न रजनीकांत के हाथों अपने माँग में सिंदूरभरवाकर सिंदूर की होली खेलती है। और वैधव्य को धारण करती है। यहाँ लक्ष्मीनारायण मिश्रजी ने स्वच्छंद-प्रेम दिखलाया है। पिता की इजाजत के बावजूद चंद्रकला मरणासन्न रजनीकांत के हाथों से अपनी माँग में सिंदूर भरवा लेती है। वह जो रजनीकांत से प्रेम करती थी, वह स्वच्छंद-प्रेम था। पाश्चात्य प्रभाव और शिक्षा का प्रभाव चंद्रकला पर होने से उसमें स्वच्छंद प्रेम की भावना जाग उठी है। अतः चंद्रकला में पाश्चात्य प्रभाव दिखाई देता है। परंतु आगे जीवन में वैधव्य को अपनाना यह भारतीयता का प्रभाव भी दिखाई देता है। इस तरह चंद्रकला में भारतीय और पाश्चात्य दोनों भी संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है।

मनोरमा भी मनोजशंकर से स्वच्छंद प्रेम करती है। वह मनोजशंकर को प्रेमी के रूप में ही मानती है। वह दोनों एक दूसरे से शादी तो नहीं करेंगे लेकिन प्रेमी अवश्य रहेंगे। यही स्वच्छंद प्रेम है। स्त्री तो प्रेम तथा करूणा की मूर्ति होती है इस बारे में मनोजशंकर कहता है - "प्रेम करना विशेषतः स्त्री के लिए कभी बुराई नहीं ... स्त्री जाति की स्तुति केवल इसीलिए होती है कि वे प्रेम करती है... प्रेम के लिए ही उनका जन्म होता है ... स्त्री चरित्र की सबसे बडी विभूति उनका सबसे बडा तत्व प्रेम माना गया है और उस पर भी यह तो उसका पहला

प्रेम है। उस में बुराई कहाँ है। प्रेम वकील से राय लेकर ··· जज से अधिकार-पत्र लेकर तो नहीं किया जाता। जो बात स्वतः स्वभाव है, प्रकृति है ··· वह तो चरित्र का गुण है, अवगुण नहीं।"[34]

नाटककार ने प्रेम की स्वच्छंदता को इतना महत्व नहीं दिया कि उससे सामाजिक मर्यादा पर कोई आँच आये। उनकी दृष्टि से मन की स्वच्छंद उडान एक मानसिक व्यभिचार है। और यह मानसिक व्यभिचार कई गुना शारीरिक व्यभिचार से भयंकर होता है। इस बारे में गुप्तजी लिखते हैं - "परंतु स्वच्छंद प्रेम में सामाजिक मर्यादाओं के पथ से हटकर केवल आत्मतृष्टि के लिए संयम ओर विवेक का त्याग कर देना ही समस्या उत्पन्न होना है।"[35]

मनोरमा और मनोजशंकर भी एक दूसरे की ओर आकर्षित हैं। सामाजिक रेखाओं में आबद्ध रहने से मनोरमा उससे विवाह नहीं करना चाहती। वह अपने प्रेम का त्याग करती है। वह मनोज को प्रेमी के रूप में तो स्वीकार करती है किंतु पति के रूप में नहीं। इन्हें अपने स्वच्छंद प्रेम की तिलांजलि देनी पडती है। यहाँ मिश्रजी ने नारी स्वातंत्र्य की दुहाई देनेवाले लोगों की पाशविक प्रवृत्ति की ओर भी संकेत किया है। उसके विचार से स्वच्छंदता का आग्रह अतृप्त कामनाओं की पूर्ति का एक प्रयास है। स्वच्छंद प्रेम रूप-लिप्सा मात्र है। इस प्रकार नाटककार ने बताया है, कि जहाँ प्रेम का आधार केवल शारीरिक आकर्षण है, वहाँ उनके स्थायित्व की बात नहीं की जा सकती। पुनः वैसी स्थिति उत्पन्न होने पर प्रेम में परिवर्तन हो सकता है। डा· उमाशंकर लिखते हैं - "स्वच्छंद प्रेम शारीरिक भूख है, जिनके आधारपर किसी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती। यह आधारहीन प्रेम समाज के लिए हितकर नहीं हो सकता।"[36] इस तरह स्वच्छंद प्रेम की समस्या दोनों रूपों में व्यक्त हुई है। प्रेम का तत्व मनोरमा और चंद्रकला के चरित्रों में व्यक्त हुआ है। फर्क इतना है कि मनोरमा का सामुहिक और चंद्रकला का वैयक्तिक रूप में। मनोरमा भारतीय अध्यात्म की सृष्टि है और चंद्रकला पाश्चात्य रोमांस का प्रतीक है।

संक्षेप में कहा जाय तो स्वच्छंद प्रेम के पीछे कामुकता की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। उस में वासना तथा शारीरिक उपभोग करने का उद्देश्य होता है। इसलिए इस विचारधारा के लोग विवाह को भी नहीं समझ पाते। इस बारे में एक विद्वान ने लिखा है - "वस्तुतः स्वच्छंद संपर्क के पीछें कामुकता और केवल कामुकता की ही प्रवृत्ति रहती है। उस में वासना तथा तरूणाई का सिर्फ पशुओं की तरह उपभोग करने का उद्देश्य होता है। इसलिए इस विचारधारा के लोग विवाह को भी काम तृप्ति के साधन के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते।"[37] इस तरह मिश्रजी ने अपने सभी समस्या नाटकों में स्वच्छंद प्रेम को महत्व नहीं दिया है। 'सन्यासी' मे दीनानाथ किरणमयी से इसलिए विवाह करता है कि वह शराब पीता है। 'आधीरात' की मायावती पर पाश्चात्य प्रभाव होने से दो प्रेमियों से प्रेम करती है, जो एक प्रकार से वासना का विस्फोट है। 'मुक्ती का रहस्य' की आशादेवी इसी स्वच्छंद प्रेम के कारण आत्महत्या करने की कोशिश करती है, तो 'सिंदूर की होली' में इस प्रेम को समाज के लिए घातक बतलाया है। नये वैचारिक आंदोलन के बहाने उच्छृंखलता प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति की आलोचना मनोरमा ने की है।

नाटककार को लगता है कि स्वच्छंद प्रेम शारीरिक भूख है। अतएवं इसकी पूर्ति के साथ स्वच्छंद प्रेम का आस्तित्व शेष नहीं रहता। विवाह की सामाजिक व्यवस्था से प्रेम की शक्ति मिलती है। बाह्य विधानों के कारण प्रेम में संदेह का पूर्ण उन्मूलन हो जाता है। संदेहहीन और सामाजिक मर्यादा से आबद्ध प्रेम में घनिष्ठता होती है। अतः जीवन की विषम स्थितियों में भी उसके टूटने का भय नहीं रहता।

इस तरह 'सिंदूर की होली' नाटक में मिश्रजी ने स्वच्छंद प्रेम की समस्या को मनोरमा और चंद्रकला के आदर्श एवं यथार्थ के रूप में चित्रित किया है। इस में पौर्वात्य (भारतीय) एवं पाश्चात्य का सुंदर सामंजस्य हुआ है। लेखक ने नाटकों में विवाह और प्रेम को एक दूसरे का पूरक न मानकर पाश्चात्य विचार-धारा के प्रभाव से अलग-अलग स्थान दिया है।

7· **काम समस्या :-**

मिश्रजी ने अपने नाटकों में काम समस्या को प्रमुख स्थान दिया है। उनके मतानुसार पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित हमारा भारतीय समाज उपरी तौर से आधुनिक बन जाता है। लेकिन अपनी जन्मजात संस्कृति को छोडने में प्रायः असमर्थ रहता है। अतः आज की नारी मानसिक रूप से उतनी दुर्बल और भावुक है, जितनी कई सौ वर्ष पहली थी। "नई चेतना के फलस्वरूप आधुनिक नारी में अपने निजी व्यक्तित्व के प्रति सजगता अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। परिस्थितिवश अनुचित रूप से आरोपित वैवाहिक बंधन की रूढ़िवादी कृतज्ञाओं के निर्वाह के प्रति उनके मन में बौद्धिक विद्रोह अंकित हुआ है। केवल पत्नी को दासी और सुखविलास की सामग्री बनने के हेतु सर्वस्व आत्मसमर्पण का प्राचीन आदर्श उन्हें कदापि मान्य नहीं है।"[38]

आधुनिक नारी की यह विवशता काम समस्या का विराट रूप धारण कर सामने आ रही है। लेकिन संस्कारों को छोडना भी नहीं चाहती। एक ओर तो वह पुरूश की रूप लोलुपता और उसकी वासनात्मक वृत्ति से घृणा करती है, उसकी निंदा करती है और दूसरी ओर वह प्रथम दर्शन में ही प्रेम करने लगती है। इसी कारण ही नारी के सामने काम समस्या अपना विराट रूप धारण करके खड़ी हो जाती है। यही नारी की प्रमुख समस्या मिश्रजी ने 'सिंदूर की होली' नाटक के अंतर्गत प्रस्तुत की है। "नाटक साहित्य में विशुद्ध काम समस्या (Sex Problem) का श्रीगणेश उन्होंने किया है।"[39]

अंग्रेजी में काम के लिए सेक्स (Sex) शब्द का प्रयोग किया जाता है। पाश्चात्य विचारवंत फ्राइड ने काम समस्या पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। वास्तव में काम समस्या मानव की मुलभूत समस्या है। काम की मुलभूत प्रवृत्ति मानव में होने के कारण काम समस्या यह एक मानव जगत की बहुत ही भयानक समस्या बन गयी है। अतः 'सिंदूर की होली' में भी मूल रूप से काम समस्या को स्पष्ट किया है। मिश्रजी ने अपने नाटकों में काम समस्या का उद्घाटन किया है। काम मानव की मुलभूत प्रवृत्ति है। इसी समस्या के संदर्भ में उन्होंने चिरंतन नारीत्व कल्पना

की है, जो उसके सभी समस्या नाटकों का उत्स है। चिरंतन नारीत्व से उनका अभिप्राय यौन-वृत्ति के सहज उद्रेक से है, जिसके लिए स्वभावतः वैवाहिक रूढ़ियों एवं नैतिकता के शासन की अपेक्षा नहीं होती।

नाटककार ने 'सिंदूर की होली' नाटक में दो नारी पात्रों के माध्यम से सेक्स समस्या को उपस्थित किया है। चंद्रकला और मनोरमा ऐसी ही नारी हैं, एक आदर्श को अपनाती है तो दूसरी यथार्थ को। चंद्रकला डिप्टी कलक्टर की इकलौती बेटी है। वह विवाहित रजनीकांत के सौंदर्य एवं उसकी मुस्कान पर प्रथम-दर्शन में ही उस पुरूष-विशेष के प्रति यौनानुभूति जागृत होती है। अस्पताल में मरणासन्न रजीनकांत के हाथों से अपनी माँग में सिंदूर लगाकर सिंदूर की होली खेलती है और वैधव्य को धारण करती है। यह उसकी अपनी अनुभूति समाज की दृष्टि से हेय होकर भी अपने प्रेम को प्रथम स्थान देती है और अंत में पिता के कर्म का यह प्रायश्चित समझकर वह घर छोड देती है। रजनीकांत के प्रति वह वैवाहिक संबंध स्थापित करने का आदर्श रखती है। ऐसा करने में वह पिता की सहमती और समाज के अनुमोदन की कुछ भी परवाह नहीं करती। प्रचलित वैवाहिक रूढ़ि के संदर्भ में यह एक रूढ़ि विध्वंसक दृष्टि है। वह मनोजशंकर को हृदय से प्रेम नहीं करती थी, अतः प्रेम-विवाह करने के लिए पिता के आदर्शो का विरोध करती है।

मनोरमा बाल-विधवा है। मनोरमा और मनोजशंकर एक-दूसरे की ओर आकर्षित है, किंतु समाज की रेखाओं में कटिबद्ध होने के कारण वे विवाह करने में असफल रहे हैं। और सामाजिक आदर्श को उन्होंने अपना लिया है। इस तरह आज का आधुनिक समाज बुद्धिवादी चक्र में इस तरह जखडा गया है कि वह अपनी उलझन में उलझता रहता है, जिन में सबसे बडी समस्या नारी या पुरूष का काम प्रमुख है। मनोरमा के शब्दों में - "पुरूष का सबसे बडा रोग स्त्री है और स्त्री का सबसे बडा रोग है पुरूष।"[40] पुरूष के बिना स्त्री और स्त्री के बिना पुरुष नहीं रह सकते। यह तो प्रकृति का नियम ही है। अतः स्त्री को पुरूष के बिना और पुरूष को स्त्री के बिना रहना ही नहीं चाहिए। मिश्रजी पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव होने से उनके नारी पात्र यौन समस्या के रूप में मिलते है। जैसे कि

इनके नाटकों में चंद्रकला, मनोरमा, आशादेवी, मालती, अशरी आदि नारी-पात्र यौन समस्या के कारण ही प्रेम की ओर आकर्षित होती हैं। किंतु प्रेम में असफल होने पर या विवाह न होने पर इस द्वंद्व को प्रस्तुत करती है। इसलिए मिश्रजी की रचना के बारे में सिसौदिया लिखते हैं - "किसी रचना में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत सह शिक्षा के प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी न हो पाने से विवाह का द्वंद्व प्रस्तुत करते हैं।"[41] यौन समस्या चिंतन से मिश्रजी सामान्य तथा विवाह का अस्तित्व शरीर-धर्म तक ही सीमित रखते हैं, जब की प्रेम को आत्मा की वस्तु मानते हैं। इसीलिए उनकी मान्यता यह है कि पतित्व एक ही हो सकता है किंतु प्रेमी अनेक हो सकते हैं। विधवाओं को दूसरा विवाह करने की अनुमति वे नहीं देते लेकिन प्रेम करने की अनुमति दे देते हैं। प्रेम को वे प्रकृति का सत्य मानते हैं। तभी तो मनोरमा मनोजशंकर से कहती है - "अगर तुम मेरे प्रेम का अर्थ समझ सको ... मुझे उसका अवसर दो। मैं तुम्हें अपना दुल्हा तो नहीं बना सकती लेकिन प्रेमी बना लूँगी।"[42] मिश्रजी ने इस नाटक में यौन प्रवृत्ति का भी बौद्धिक मनोवैज्ञानिक ढंग से विवेचन किया है, किंतु सेक्स के शारीरिक भोग के संबंध में रूढ़िवादी विचारों का परिचय दिया है। उनके समस्या नाटकों की बुद्धिवादी नारियाँ परिस्थितिवश प्रेमी से भिन्न किसी अवांछित पुरूष द्वारा शरीर-धर्म लूट जाने पर उसी से विवाह कर लेती हैं तथापि प्रेमी के प्रति उनका लगाव ओर यौन भाव बना रहता है। मिश्रजी के नारी-पात्रों में आशादेवी, मालती, चंद्रकला, मनोरमा इसी कोटि के स्त्री पात्र हैं।

मुरारीलाल भी सेक्स भावना से पीड़ित है। अपनी बेटी से भी दो साल छोटी मनोरमा पर वे आसक्त हैं और मनोरमा के परिहास को सत्य बनाना चाहते हैं। इस तरह नाटककार ने काम प्रवृत्ति को पुरूष की लोलुपता कहा है। वास्तव में काम की प्रवृत्ति प्रकृति की देन ही है लेकिन मनुष्य को उसपर नियंत्रण रखना आवश्यक है। लेकिन इसपर अंकूश लगाना बहुत ही कठिण कार्य है। अतः यह सारे विश्व की समस्या है। इसी बारे में सावित्री स्वरूप लिखती हैं - "यह समस्या विश्व की एक व्यापक समस्या है और फ्रायड के अनुसार जीवन के सभी व्यापारों मे यह

विद्यमान रहती है। वैसे तो काम वासना एक व्यक्तिगत विषय है, परंतु विवाह की परंपरा एवं नियम रूढ़िवादी होने के कारण आधुनिक वातावरण में पले युवक-युवतियों को उनसे टक्कर लेनी पडती है।"[43] इस प्रकार यौन भावना ही मनुष्य की समस्थ मनोविकारों का केंद्र होता है। हर एक व्यक्ति में सेक्स की प्रवृत्ति रहती ही है। इसी के संदर्भ में सुरेशचंद्र शुक्ल लिखते हैं - "पाश्चात्य मनोविश्लेषणवादी विचारक फ्रायड के विचारानुसार मनुष्य की समस्त मनस्थितियों, मनोवेगों, और मनोविकारों का केंद्र सेक्स की चेतना यौन भावना है। मिश्र ने अपनी नाटय् रचनाओं में प्रेम और यौन कुंठाओं उलझनों को सुलझाने का प्रयास मनोविश्लेषणात्मक पद्धतियों के आधारपर किया है। नारी और पुरूष के आकर्षण को स्वाभाविक बताते हुए उन्होंने मानवीय दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण किया है। प्रेम और घृणा के प्रसंगों में पात्रों की अंतरमुखी प्रवृत्तियों का विश्लेषण सशक्त रूप में हुआ है। प्रेम और वासना जैसे तत्वों का विश्लेषण करते पात्र अपने तथा दूसरों के मनोभावों की राहों को खोलते हैं।"[44]

मिश्रजी के नाटकों की प्रमुख समस्या यौन-समस्या है, जिसको उन्होंने चिरंतन-नारीत्व की समस्या कहा है। भारतीय जीवन की यह व्यावहारिक समस्या नहीं है, बल्कि ऐसे व्यक्तियों की समस्या है जो अपने जीवन व्यापार में स्वाभाविक गति की अपेक्षा बौद्धिक प्रवाह को अधिक महत्व देते हैं। इस बारे में इंद्रपालसिंह इंद्रजी लिखते हैं - "यौन-संबंधी ये समस्याएँ हिंदू समाज की रूढ़िबद्ध विवाह संस्था संबंध है, जहाँ यौन आवश्यकताओं को नीति-विधान के नाम पर अप्राकृतिक रूप से दमित किया जाता है। अतः उससे पीड़ित व्यक्तित्व स्वतंत्रता के लिए विस्फोट करना चाहता है।"

इस तरह हिंदी समस्या नाटय् के क्षेत्र में पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्रजी प्रथम नाटककार है, जिन्होंने काम की वैयक्तिक समस्या का विश्लेषण किया है। मिश्रजी ही काम समस्या के प्रमुख नाटककार है और उनका एक प्रमुख स्थान है। इस प्रकार मिश्रजी ने 'सिंदूर की होली' नाटक के अंतर्गत चंद्रकला, मनोरमा, मनोजशंकर

तथा मुरारीलाल इन पात्रों की काम समस्या का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके अंत में उसका हल भी आदर्शवाद के रूप में किया है।

8. अंतरदद अथवा मानसिक संघर्ष की समस्या :-

समस्या नाटकों में वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं का निरूपण होता है। अतः इन समस्याओं के साथ में द्वंद तथा संघर्ष की समस्या भी निहित रहती है। समस्या नाटकों में बाहय द्वंद की अपेक्षा अंतरद्वंद तथा मानसिक संघर्ष की प्रधानता रहती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समस्या नाटकों का प्राण ही आंतर द्वंद होता है। इस बारे में डा. उमाशंकरसिंह ने लिखा है - "समस्या नाटकों का संघर्ष बौद्धिक होता है। उस में वैचारिकता का प्राधान्य होता है। स्वच्छंदवादी नाटकों का संघर्ष कायिक होता है, समस्या नाटकों का मानसिक। यद्यपि अंतरिक संघर्ष का महत्व बाहय संघर्ष से अधिक है तथापि बाहय संघर्ष की अपनी मर्यादा है, बाहय संघर्ष से नाटक में गतिशीलता और नाटकीयता आती है। मिश्रजी के समस्या नाटकों की प्रायः सभी घटनाएँ परोक्ष में घटती है।"[45]

मिश्रजी का 'सिंदूर की होली' नाटक अंतरदद प्रधान नाटक है। बाहय द्वंद सिर्फ रजनीकांत की हत्या एवं सामाजिक रूढ़ियों को लेकर है। इस नाटक के पात्र मानसिक भावों का अंतरद्वंद लेकर सामने आते हैं। प्रायः सभी प्रमुख पात्र बुद्धिवादी हैं। इस नाटक के अंतर्गत मुरारीलाल, माहिरअली, मनोजशंकर, चंद्रकला एवं मनोरमा इन पात्रों के भीतर संघर्ष का चित्रण हुआ है।

नाटक के आरंभ में ही मुरारीलाल अपने अंतरद्वंद से पीड़ित दिखलाया है। आठ हजार रूपयों की खातिर मुरारीलाल ने मनोजशंकर के पिता की हत्या की थी। यह रहस्य वे छुपाना चाहते हैं। वे कहते हैं - "मनोज अगर जान जायगा कि उसके पिता ने मेरी वजह से आत्महत्या की थी... इस वर्ष का समय निकल गया ... अभी तक तो बात छिपी हुई है। लेकिन अगर किसी दिन खुल गयी तो मेरे मुँह पर स्याही पुत जायगी और फिर मैं किसी काम का नहीं रहूँगा।"[46]

इसीलिए तो मुरारीलाल मनोजशंकर को उच्च शिक्षा दिलाकर अपना दामाद बनाना चाहते हैं। इस प्रकार व्यक्ति अपने किये का अंत में प्रायश्चित करके मन को शांति मिलने के लिए प्रयास करता है। इतना होने पर भी मन में अंतरद्वंद्व चलता ही रहता है वह पूरी तरह से मिट नहीं सकता।

मुरारीलाल का दूसरा अंतरद्वंद्व रजनीकांत की हत्या को लेकर है। उनके स्वार्थ के कारण ही रजनीकांत मारा जाता है। उनकी लोभवृत्ति जहाँ असत् की ओर प्रेरित करती है, वहाँ उनके हृदय में दया का भाव भी निहित रहता है। उनके अंतरमन का संघर्ष माहिरअली के प्रति निम्न कथन में स्पष्ट हो जाता है - "हूँ जरूर ऐसी बात थी। उसके चेहरे से शैतानी टपक रही थी। और मालूम होता है, उसकी भी राय से वह मारा गया होगा। मनुष्य का स्वार्थ ··· इसके लिए आदमी क्या नहीं कर डालता? (कमीज की अस्तीन समेटकर) इधर देखो मेरे रोयें फूल गये हैं ··· जैसे सिर में चक्कर आ रहा है ··· क्या समझते हो अगर वह मारा गया तो उसमें मेरी वजह ···।"[47] इस तरह सत्-असत् का यह अंतरद्वंद्व मुरारीलाल के मानस को मथता रहता है। अपने समाधान के लिए वे कानून की विवशता आदि के द्वारा अपने को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। वास्तव में मुरारीलाल ने इस नाटक में खलनायकत्व की भूमिका निभायी है, जो सहानुभूति पूर्ण बन बयी है।

माहिरअली ने भी मनोजशंकार के पिता की आत्महत्या में सहयोग दिया था। वह बार-बार इस अपराध के लिए पश्चाताप प्रकट करता है। इसलिए तो वह रजनीकांत की हत्या नहीं करना चाहता। वह इसके लिए मुरारीलाल को रोकता है। किंतु उसका सब कहना व्यर्थ हो जाता है। मुरारीलाल तथा कानून के भय से वह मनोजशंकर को उसके पिता की आत्महत्या का रहस्य नहीं बता देता। किंतु यह रहस्य उसके मन को सदैव कुदता रहता है। और यह सत्य है कि मनुष्य ने जो भी पाप कर्म किये होते हैं उन पापकर्मो की याद उन्हें बार-बार होती है। वह कितनी भी भुलाने की कोशिश क्यों न करें। उसको अंत में पश्चाताप जरूर हो जाता है। इसी प्रकार माहिरअली की भी अवस्था हो चुकी है। वह यह नौकरी छोडकर

जा भी नहीं सकता। इसलिए वह दिन में भी भयानक सपने देखता है - "मैंने एक सपना देखा था, कि मुझे पकडने के लिए दो दूत दो शैतान आये थे। मेरी बाँह पकडने लगे ... मैं घबड़ाकर जाग गया। कहकर एक बार फाँसी पड पाना रोज की फाँसी से अच्छा है।"[48] इस तरह माहिरअली उस पाप की स्मृति से डर जाता है और वह विक्षिप्त सा होता है। और इसी विक्षिप्तावस्था में शैतान और भूत के दृश्य दिखायी देने लगते हैं।

मनोजशंकर का हृदय भी तीव्र अंतरद्वंद्व तथा संदेह से भरा हुआ है। आत्मघाती पिता का पुत्र होने की हीन-ग्रंथी से वह ग्रस्त है। उसे यही संदेह सताता रहता है कि उसके पिता ने किस कारण से आत्महत्या की थी। किसी के भी पिता ने आत्महत्या की होगी तो उसका कारण जानने के लिए वह सदैव बेचैन रहेगा। इसी प्रकार मनोजशंकर भी अपने पिता की आत्महत्या का कारण खोजने के लिए बेचैन है। उसके अंतरमन में इसी विषय को लेकर द्वंद्व शुरू है। और स्वयं को आत्मघाती पिता का पुत्र समझता है। उसकी दृष्टि में - "आत्मघाती पिता के पुत्र के लिए संसार में सम्मान कहाँ ...।"[49] वह स्वयं को आत्मघाती पिता का पुत्र समझता है और पिता ने आत्महत्या क्यों की थी यह जानने के लिए उत्सुक रहता है। कोई भी मनुष्य में ऐसीउत्सुकता देखने को मिलेगी। इस प्रकार मिश्रजी ने मानसिक अंतरद्वंद्व का चित्रण मनोजशंकर के रूप में प्रस्तुत किया है। यह आत्महत्या का रहस्य उसकी आत्मा को बोझ लगती है। यही बेचैनी मनोज के जीवन की असफलता का मूल कारण है। मनोज कहता है - "उसी की चिंता में मेरा स्वास्थ्य बिगड गया, मानसिक बीमारी हो गयी। बराबर रात को मैं उन्हें स्वप्न में देखता था और सारा दिन उसी स्वप्न की भावना में पडा रहता था। पढ़ाई में भी कभी मेरी तबीयत नहीं लगी।"[50]

वह चंद्रकला को अपनाने भी असफल रह जाता है। चंद्रकला के लिए मन में कोई जगह न बना सका, जब कि रजनीकांत की एक मुस्कान ने चंद्रकला के हृदय को जीत लिया था। वह स्वयं को चंद्रकला के लिए परिपूर्ण नहीं समझता था। उसे स्वयं में कमियाँ नजर आती थी। इस प्रकार मनोजशंकर का चित्रण लेखक ने अच्छे ढंग से किया है। संक्षेप में पिता की आत्महत्या के कारण ही मनोज इसी

स्थिति में पडा रहता है। इस प्रकार मनोजशंकर का अंतरद्वंद उसे नाटक के आरंभ से लेकर अंत तक उसके मन को घायल बनायें रखता है।

मनोरमा का वैधव्य और चंद्रकला की परिस्थितियाँ अंतरद्वंद को जन्म देती हैं। मनोरमा मनोजशंकर को चाहती है किंतु सामाजिक रेखाओं को लांघना नहीं चाहती। समाज की रूढ़ियाँ, परंपराओं के कारण मनोरमा और मनोजशंकर चाहते हुए भी एक नहीं हो सकते। यही कारण है कि उन दोनों के मन अंतरद्वंद से पीड़ित रहते हैं। मनोरमा मनोजशंकर से शादी नहीं कर सकती लेकिन उसे अपना प्रेमी बना लेती है। इस प्रकार कई बार मनुष्य को समाज की खातिर सबकुछ बलिदान करना पडता है। भारतीय समाज में तो रूढ़ियाँ, परंपरायें इतनी है कि इसका पालन करते-करते मनुष्य थक जाता है और संपूर्ण जीवन में तो रूढ़ियों को संभालना ही पडता है। रूढ़ियों के मार्गपर चलने से मानव मन में कई बार संघर्ष शुरू रहता है। इस प्रकार इस नाटक में मनोरमा और मनोजशंकर के मन में मानसिक संघर्ष दिखलाया गया है। मनोरमा अंतरमन से मनोज के साथ आत्मीयता को महसूस करती है। किंतु अपने वैधव्य के कारण वह अपनी चित्रकला में मन लगाती है, उसमें भी असफल रहती है। अपने मानसिक संघर्ष का निरूपण सामाजिक आदर्श में स्थापित करती है।

चंद्रकला भी भावुकता में आकर वैधव्य को धारण करती है और मानसिक संघर्ष का शिकार हो जाती है। वह मनोरमा से कहती है - "तुम्हारी मजबूरी पहले सामाजिक और फिर मानसिक हुई, मेरी मजबूरी प्रारंभ में ही मानसिक हो गई। तुम इस विचार में पड गई हो कि मेरा निर्वाह कैसे होगा। रोटी और कपडे के प्रश्न को लेकर स्त्रीत्व की मर्यादा बिगड गई। हमारा ··· स्त्रियों का निर्माण भी उन्हीं उपकरणों से हुआ है, जिनसे पुरूषों का हुआ है, लेकिन तब भी हम पुरूषों की गुलामी में सदैव से चली आ रही हैं।"[51] इस तरह चंद्रकला के मन में भी एक प्रकार का मानसिक द्वंद दिखलाया है। इस तरह चंद्रकला अंत स्वयं को पिता के कर्म का प्रायश्चित समझकर घर छोड जाने का निश्चय करती है। यहाँ चंद्रकला में स्वच्छंद प्रेम की प्रवृत्ति दिखाई देती है। चंद्रकला में दो रूपों में अंतरद्वंद दिखाई देता है। एक ओर प्रेम का द्वंद तो दूसरी ओर विवाह की समस्या का। वह प्रेम

को यथार्थ मानकर उसे प्रथम महत्व देती है तो दूसरी ओर प्राचीन विवाह परंपरा का खंडन करती है। वह कहती है - "विवाह तो मेरा भी हो गया। हजार-दो-हजार आदमी भोजन न कर सके, दस-बीस बार शंख न बजा, थोडे मंत्र और श्लोक न पढे गए यही न?"[52]

इस तरह प्राचीन संस्कारों एवं बौद्धिकता तथा व्यक्ति और सामाजिक रूढियों का द्वंद्व को मिश्रजी ने प्रस्तुत किया है। इस नाटक के सभी पात्र प्रारंभ से लेकर किसी-न-किसी मानसिक अंतरद्वंद्व से आत्मपीड़ित हैं। इन पात्रों में क्रियाशीलता की कमी है, इसकी पूर्ति अंतरद्वंद्व से हुई हैं। कथोपकथनों एवं सात्विक और मूक अभिनय के द्वारा अंतरद्वंद्व को प्रस्तुत किया गया है। अतः नाटककार ने पात्रों के मानसिक संघर्ष का चित्रण बडे ही सुक्ष्मता से किया है।

9. **रोग के उपचार की समस्या :-**

लक्ष्मीनारायण मिश्रजी ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को महत्व देते हुए रोग के उपचार की समस्या प्रस्तुत की है। किसी प्रकार के रोग के उपचार की समस्या प्रस्तुत की है। किसी प्रकार के रोग के कारणों की समुचित छानबीन करने के पहले डाक्टर को बुला लेना श्रेयस्कर नहीं है। इस नाटक में लेखक ने डाक्टर चिकित्सा पर व्यंग्य किया है। क्योंकि डाक्टर केवल शारीरिक चिकित्सा से परिचित हैं और आजकल इस जगत में "अधिकांश बीमारियाँ मानसिक विक्षोभ के कारण होती है।"[53] इस प्रकार आधुनिक युग में बीमारियाँ मानसिक होती हैं। परंतु आजकल के डाक्टर प्रत्येक बीमारी की शारीरिक दवा करते हैं। आजकल के डाक्टर लोगों को चिकित्सा करने नहीं आता। इसी विषय को लेकर लेखक ने डाक्टर की चिकित्सा पद्धति परव्यंग्य किया है। इसी तरह डाक्टर लोगों की चिकित्सा पद्धति ही गलत दिखाई देती है। और ऐसी चिकित्सा करके रोग के उपचार करते है। इसी कारण रोग से पीड़ित व्यक्ति ठिक होने के बजाय और बीमार पड जाता है।

इस नाटक में चंद्रकला मानसिक व्यथा से पीड़ित है। नाटककार ने प्रसंग रूप में चंद्रकला के इलाज के लिए डाक्टर को उपस्थित किया है। डाक्टर दवाइयों

और इंजेक्शनों से चंद्रकला का रोग दूर करना चाहता है। सत्य तो यह है कि चंद्रकला मानसिक व्यथा से पीड़ित होने के कारण उसे मानसिक सलाह की ही जरूरत है। शारीरिक लक्षण न दिखाई देने से उन्हें लगता है चंद्रकला के हृदय की धडकन किसी भी क्षण बंद हो सकती है। इसलिए शरीर में दवा डालने की सोचते हैं। तब मनोजशंकर उन्हें कहता है -"इसका मतलब कि आप उसके शरीर रोग पैदा करना चाहते हैं। अब तक रोग रहा या नहीं, लेकिन अब जरूर हो जाना चाहिए।"[54] अतः मानसिक रोग निदान ज्ञान के बिना शारीरिक चिकित्सा करना अपूर्ण होता है और कभी-कभी वह घातक भी सिद्ध होती है। इस चिकित्सा पद्धति में रोग के कारण का अनुसंधान ही नहीं किया जाता और रोग की कल्पना कर दवा दी जाती है और यह दवा व्यक्ति के लिए घात भी सिद्ध होती है। डाक्टर चंद्रकला की मनःस्थिति की जाँच नहीं कर पाता। उसके शरीर को कष्ट देकर उसे जिलाना चाहता है। किंतु मानसिक रोग का इलाज शरीर में दवा देने से नहीं मिटेगा। तभी मनोजशंकर कहता है - "आप रोग के कारण का अनुसंधान नहीं करते। रोग की कल्पना कर दवा करते हैं। नतीजा यह होता है कि आप लोग संजीवनी लिए ही रहते हैं और मृत्यु-संख्या नित्य बढती जा रही है।"[55]

इस समस्या के विवेचन द्वारा नाटककार ने एक ओर समाज का ध्यान मानसिक बीमारियों की सम्यक चिकित्सा की ओर आकर्षित किया है तो दूसरी ओर वैज्ञानिक उपलब्धि इस दृष्टि से अपूर्ण और असमर्थ है। अतः मानसिक रोग के कारणों का पता लगाना अत्यावश्यक होता है। डाक्टर के प्रसंग में नाटककार ने प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के महत्व का प्रतिपादन किया है। मनोजशंकर कहता है - "मनुष्य अपनी आदिम अवस्था में आज से कहीं अधिक स्वस्थ था ··· इसलिए कि तब डाक्टर न थे। मनुष्य था, और शक्ति और जीवन का केंद्र प्रकृति थी। स्वास्थ के कृत्रिम साधनों और बोतल की दवाओं ने स्वास्थ्य की जड काट दी। स्वास्थ्य तो आप लोगों की आल्मारियों में बंद है ··· लेकिन यह बहुत दिन नहीं चलेगा। प्रकृति अपना बदला लेगी। प्रकृति के रास्ते पर लौट आना ··· नीरोग होना दोनो बराबर है।"[56] इस तरह प्रकृति भी मनुष्य को जीवदान देती है। इन्हीं प्रकृति के जडी-बुटी ने मनुष्य को कितने ही दिनों तक जिलाने की कोशिश की है। और इसी कार्य में जडी-

बुटीयाँ सफल भी रही हैं। किंतु आज की दवाओं ने मनुष्य के शरीर को असंख्य यातना देकर मार डालने का प्रयास किया है। प्रकृति की जडी-बुटी ने बीमारी के साथ जीवन का संबंध जोडा था लेकिन आज के डाक्टरों की चिकित्सा पद्वति समोचित न होने के कारण व्यक्ति के साथ मृत्यु का संबंध जोड देते हैं और इसी में सब-कुछ बिगड जाता है।

मनोजशंकर चंद्रकला को घुमाने ले जाता है। इस प्राकृतिक इलाज से चंद्रकला ठिक हो जाती है। इस तरह मनोज चंद्रक्ला की चिकित्सा-प्रणाली में सफल हो जाता है। अतः नाटककार ने आज की डाक्टरी चिकित्सा पद्धति पर व्यंग्य किया है। आज के युग में वहुत सारी बीमारियों का कारण मानसिक है। वैज्ञानिक प्रणाली एवं अविष्कारों से मनुष्य चेतना शून्य बनता जा रहा है। मानसिक बीमारियों के बारें में अधिक जानकारी डाक्टर को न होने से रोग का उपचार गलत मार्ग से किया जाता है। रोग का निदान व्यवस्थित न होने पर अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

इस तरह नाटककार ने नाटक में रोग के उपचार की समस्या को सुक्ष्मता एवं सहजता से स्पष्ट किया है और आज की रोग की चिकित्सा-प्रणाली पर व्यंग्य किया है। सत्य तो यह है कि आजकल के डाक्टर लोगों को व्यक्ति के बीमारियों का योग्य निदान न होने के कारण ठिक तरह से इलाज नही हो पाता है। यही आज की वर्तमान युग की ज्वलंत समस्या है।

10· **बुद्विवादी की समस्या :-**

'सिंदूर की होली' समस्या नाटक का आधार बुद्विवाद एवं तर्कशीलता है। इस नाटक के सभी पात्र बुद्वि और तर्क का आश्रय लेते हैं। मिश्रजी ने भी नाटक बुद्विवाद से प्रेरित होकर लिखे हैं। लेखक की कला कलाकार के रूप में यथार्थोन्मुख है, लेकिन विचार के क्षेत्र में वे आदर्शवादी एवं परंपरावादी है।

मिश्रजी के नाटकों की समस्याएँ बौद्विक व्यक्ति की समस्याएँ हैं। व्यक्ति उन्हें अनुभव करके अंतर में वेदना और तडप का अनुभव करता है परंतु संस्कारों

को तोडकर अलग हो जाने का साहस उस में नहीं रह जाता। मिश्रजी की भी यही स्थिति है। वे पाश्चात्य विचार और शैली से प्रभावित हुये किंतु भारतीय परंपरा को संस्कारों को छोड नहीं सकें। एक ओर वे स्वाभाविकता की आवाज उठाते हैं, बौद्धिकता की दुहाई देते हैं, तो दूसरी ओर विवाह प्रथा तथा जन्म-जन्मांतर के सिद्धांत को छोडने के लिए तैयार नहीं। प्रारंभ में वे एक भावुक कवि रहे, बाद में अपने समस्या नाटकों की भुमिकाओं द्वारा उन्होंने बुद्धिवाद की आवाज उठाई। लेकिन उनका बुद्धिवाद शुद्ध तर्क पर अवलंबित हो नहीं सका। मिश्रजी स्वयं ही बुद्धिवादी हैं। मिश्रजी के बुद्धिवाद में भ्रम और मिथ्या को स्थान नहीं है। क्योंकि इस में तीक्ष्ण सत्य होता है। बौद्धिक विश्लेषण की प्रवृत्ति उनके समस्या नाटकों में दिखाई देती है। श्यामनंदन प्रसाद सिंहजी लिखते हैं - "मिश्रजी बुद्धिवादी कलाकार है और उन्होंने बुद्धिवाद पर अपने नाटकों का निर्माण किया है, जहाँ समाज और व्यक्ति की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास इमानदारी के साथ किया गया है।"[57]

इस नाटक के अंतर्गत चंद्रकला और मनोरमा दोनों शिक्षित, इस बुद्धिवादी पात्र हैं। चंद्रकला शिक्षित होने कारण ही भावुकता के आवेग में वैधव्य का वरण करती है और अपने रोग को बढा देती है। अपने तर्क से पारंपारिक रूढ़ियों का खंडन करके स्वयं के वैधव्य को सार्थक करती है। प्रेम को कसौटि पर तौलती है। प्रेम को अधिक महत्व देती है। चंद्रकला ने अपनी माँग में सिंदूर भरकर यह दिखलाया है कि रूढ़ियों का जों आदर्श है, उससे यथार्थ (जीवन का) महत्वपूर्ण होता है। चंद्रकला अपने जीवन में यथार्थ को महत्व देना चाहती है जो सत्य है। वह कहती है - "प्रेम दो-चार से तो हो नहीं सकता और फिर अब प्रथम दर्शन में प्रेम का समय भी नहीं रहा।"[58] चंद्रकला ने जो कुछ भी किया है वह बुद्धिवादी होने के कारण। इस प्रकार शिक्षित एवं बुद्धिवादी होने के कारण व्यक्ति के जीवन में ऐसी कुछ समस्याएँ निर्माण हो जाती है। इस तरह का प्रेम इस बडे संसार में कितनी बार हो सकता है तब उसका बुद्धिवादी व्यक्तित्व भी उसका उद्धार नहीं कर पाता। तब उसकी मानसिक गंथी बँधी की बँधी ही रह जाती है। "मिश्रजो ने उसकी इस मनःस्थिति पर भारतीय अध्यात्मवाद का आवरण चढाकर अपनी दृष्टि में उसे उदात्त

और आज के प्रगतिशील जीवन दर्शन से उस निश्चेष्ट एवं मृतवत बना दिया है।"[59] अतः मिश्रजी पर पाश्चात्य लेखक इब्सन और शा के बुद्धिवादी शैली का व्यापक प्रभाव रहा है। चंद्रकला तो अपने प्रथम दर्शन में ही रजनीकांत से प्यार कर बैठती है और मरणासन्न रजनीकांत के हाथों से अपनी माँग में सिंदूर भर लेती है। चंद्रकला का यही सिंदूर भरना बुद्धिवादी होने के कारण ही है।

मनोरमा बाल-विधवा है। वह विधवा-विवाह को समाज के लिए दूषण मानती है। मनोजशंकर से प्रेम होते हुए भी वह उसे प्रेमी बनाना स्वीकार करती है किंतु पति के रूप में नहीं। मनोरमा पर भी पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव होने के कारण वह मनोजशंकर को प्रेमी के रूप में अपनाती है, पति के रूप में नही। बुद्धिवादी होने के कारण वह विधवा-विवाह का खंडन बुद्धिवाद के रूप में करती है। उसका मत हैं कि - "विधवा-विवाह हो रहा है··· लेकिन वैधव्य कहाँ मिट रहा है? समाज इस आग को बुझा नहीं सकता, इसलिए उसे अपने छज्जे से उठाकर अपनी नींव में रख रहा है। ···· अभी तक तो केवल वैधव्य की समस्या थी··· अब तलाक की समस्या भी आ रही है।"[60] इस नाटक के माध्यम से लेखक ने सामाजिक रूढ़ियों की ओर संकेत किया है। विधवा-विवाह होने से वैधव्य की समस्या बनी ही रहेगी। वैधव्य नहीं मिट सकेगा। और विधवा-विवाह करने से तलाक की समस्या निर्माण होगी। यह जो स्पष्टिकरण लेखक ने दिया है वह सच लगता है। मनोरमा की दृष्टि में विधवा का आदर्श समाज के लिए गौरव की चीज है, क्योंकि इसके भीतर संकल्प है, साधना है, त्याग है, तपस्या है। मिश्रजी कहते हैं - "तर्क द्वारा कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है। मिश्रजी का यह दृष्टिकोण विधवा विवाह के समर्थ को चौंकानेवाला तथा धक्का देनेवाला है। इस तरह बुद्धिद्वारा एक रूढ़ि का समर्थन किया गया है।"[61] मनोरमा बुद्धिवादी होने के कारण रूढ़ि का समर्थन करती है। यहाँ लेखक ने मनोरमा के रूप में बुद्धिवादी आदर्श भारतीय नारी का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इस प्रकार मिश्रजी के दो स्त्री पात्र एक दूसरे से भिन्न-भिन्न विचारवाले दिखलाई देते हैं। चंद्रकला बुद्धिवादी के कारण यथार्थ को महत्व देती है तथा उसपर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। मनोरमा बुद्धिवादी

होकर भी दूसरा विवाह नहीं करना चाहती और भारतीय संस्कृति के आदर्श को महत्व देती है।

इस तरह मिश्रजी की बुद्धिवादी नारी पहले प्रेम करती है, किंतु प्रेम में असफल होकर बुद्धिवादी हो जाती है। चंद्रकला भावुक तथा मनोरमा परम बुद्धिवादी नारी है। इसीलिए एक यथार्थ को महत्व देती है तो दूसरी आदर्श को। "तर्क दोनों देती हैं - एक अपनी भावुकता की समर्थन में तथा दूसरी अपनी रूढ़िवादिता के पक्ष में। पाठक रूढ़िवादिता और भावुकता की बीच में किसका समर्थन करें यह स्वयं एक अजीब समस्या है।"[62] इस प्रकार दोनों भी बुद्धिवादी होने पर भी अंधविश्वासों से बूरी तरह से अक्रांत है। मनोरमा अपने वैधव्य का समर्थन करती है तो चंद्रकला रजनीकांत के हाथ से सिंदूर अपनी माँग में भरवाकर जीवन की यथार्थ को महत्व देती है। वह आदर्श को महत्व नहीं देती।

मिश्रजी की बुद्धिवादी नारी एक ओर सामाजिक बंधनों को तोडती हुयी दिखाई पडती है और दूसरी ओर मनोरमा के शब्दों में समस्या का हल बुद्धिवाद में खोजना चाहती है - "संसार की समस्याएँ ··· जिनके लिए आज-कल इतना शोर मचा है, तराजू के पलडे पर नहीं सुलझाई जा सकती ··· वे पैदा हुयी है बुद्धि से और उसका उत्तर भी बुद्धि से ही मिलेगा।"[63] इस प्रकार दोनों नारी पात्र बुद्धिवादी होने के साथ-साथ चंद्रकला यथार्थ को तो मनोरमा अपनी संस्कृति के आदर्श को महत्व देती हैं। अतः मनोरमा और चंद्रकला दोनों इब्सन और शा के बुद्धिवादी नारी-पात्रों की छाया है। "इन दोनों का जीवन दर्शन जिसे लेकर इन्होंने परस्पर तथा अन्य व्यक्तियों के साथ तर्क-वितर्क किया है, पूर्णतः भारतीय है। फिर भी इन्होंने पुरूष से नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की घोषणा की है। इसमें पश्चिम की बुद्धिवादी नारी का प्रभाव है।"[64] इस तरह मिश्रजी के पात्र धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करते हैं और स्वस्थ बौद्धिकता का अवलंब करते हैं। मिश्रजी के पात्र शिक्षित होने के कारण बुद्धिवादी हैं। वे अपने तर्क-वितर्क बुद्धि के सहारे निकालते हैं। मिश्रजी के पात्र बुद्धिवादी होने के कारण उनके अंतर मन में द्वंद्व होता रहता है। अतः

मिश्रजी पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव होने के कारण ही उनके नाट्य साहित्य में बुद्धिवाद और उससे उत्पन्न अंतरद्वंद्व का चित्रण हुआ है। वस्तुतः - "मिश्रजी ने नाटकों में पात्रों की मनःस्थिति और द्वंद्व का चित्रण किया। इस प्रकार से मिश्रजी की नाट्य-शैली पर आधुनिक बुद्धिवादी युग का प्रभाव है।"[65] इसलिए मिश्रजी आधुनिक युग की परंपरा में महत्वपूर्ण है। अन्य नाटकों के उद्देश्य के समान मिश्र जीवन उद्देश्य 'सिंदूर की होली' में भी समस्याओं का प्रतिपादन और अपने बुद्धिवादी सिद्धांत की प्रतिष्ठा का रहा है। इस तरह इसमें वर्तमान देश काल की ज्वलंत समस्याओं को उठाया है। प्रेम विवाह, वैधव्य और यौन-संबंधी समस्याओं का हल मिश्रजी ने बुद्धिवादी के रूप में प्रस्तुत किया है। मिश्रजी ने प्रथम भावुकता को अपनाया है, फिर इसमें असफल होने पर उन्हे बुद्धिवादी के रूप में प्रस्तुत किया है। किंतु जिन समस्याओं का निरूपण उन्होंने बौद्धिक धरातल पर किया है वहाँ वे परंपरावादी नाटककार बन गये हैं। किंतु इस दिशा में उनका अभिनव प्रयास प्रशंसनीय माना जाएगा। मिश्रजी का दूसरा उद्देश्य बुद्धिवादी का प्रतिपादन करना है। 'सिंदूर की होली' में लेखक ने सत्य की अभिव्यक्ति से मानसिक संतोष तथा समस्याओं का बुद्धिवादी हल लेखक ने बडे कौशल से प्रतिपादित किया है।

संक्षेप में जीवन की वास्तविकता, यथार्थता इस नाटक की आधारशीला बनी है। वर्तमान समस्याओं के बौद्धिक समाधान खोजने की दिशा में प्रयासों का चित्रण इस नाटक में हुआ है।

11· **भावुकता की समस्या :-**

वस्तुतः कोई भी व्यक्ति भावुकता-विहीन नहीं हो सकती। सत्य की खोज में भावुकता भले ही बाधक हो, परंतु जीवन में उसकी उपेक्षा करना संभव नहीं है। भावुकता-विहीन मनुष्य मशीन जैसा बन जायेगा। इस प्रकार मनुष्य भावुकता को हटाकर अपना जीवन व्यतित नहीं कर सकता, हाँ उसपर अधिकार अवश्य पा सकता है। भावुकता का विरोध करनेवाले मिश्रजी भी इसे पूरी तरह से छोड नहीं सकें। मिश्रजी पर पाश्चात्य प्रभाव होने पर भी उन्होंने भावुकता को विरोध नहीं

किया। इसी बारे में डा॰ बच्चन सिंह लिखते हैं - "शा की भाँति मिश्रजी ने भी प्रमुख रूप से यौन तथा सामाजिक समस्याओं को अपने नाटकों का प्रतिपाद्य बनाया है। सच पूछिए तो मिश्रजी के नाटकों में भावुकतापरक रोमानी प्रेम की समस्या ही प्रधान है।"[66]

'सिंदूर की होली' में मूल समस्या भावलंबनवादी आकर्षण की दिखाई देती है। इसी भावुकता के कारण ही नाटक में सामाजिक समस्याओं का निर्माण हुआ है। नाटककार ने चंद्रकला की भावुकता को स्पष्ट किया है जो अस्वाभाविक है। वह पाश्चात्य वातावरण में शिक्षित नारी-पात्र है। अतः स्वच्छंद प्रेम की ओर उसका आकर्षण स्वाभाविक है। किंतु इसके जैसा न कोई वैधव्य स्वीाकर करेगा या प्रायश्चित करेगा। रजनीकांत जैसे पुरूष और भी संसार में थे। परंतु वह एक शिक्षित नारी होकर भी विवाहित एवं मरणासन्न रजनीकांत को प्रथम दर्शन में प्रेम करती है। उसकी यह भावुकता इन शब्दों में स्पष्ट होती हैं - "उस दिन की स्मृति में, उसका वह हँसना, उसकी रत्तनार आँखे ··· लंबी-लंबी, उसका वह उभरा हुआ मस्तक ओर उस पर काले वालों की दो-चार लटें पलभर में उसकी नजर कमरे में चारों ओर दौड गयी ··· उसका हँसना तो जैसे एक साथ जुही के असंख्य फूलों का बरस पडना था।"[67] चंद्रकला में भावुकता जनित पराकाष्ठा है। जिसके कारण वह सामाजिक मर्यादाओं को ठूकराकर अपने प्रेम को सार्थक बनाती है। उसकी दृष्टिसे उसका वह प्रेम यथार्थ है। उन्होंने अपने प्रथम दर्शन में ही रजनीकांत से प्रेम किया था। वह उसके सिवा दूसरे किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन में प्रिया के रूप में स्थान नहीं दे सकती। उसका मत है कि व्यक्ति अपने जीवन में एक ही बार प्रेम करता है और वह प्रथम-दर्शन में ही करता है। यहाँ मिश्रजी ने चंद्रकला के रूप में यथार्थ को महत्व देने का प्रयत्न किया है। और चंद्रकला शिक्षित होने के कारण संस्कृति का आदर्श, रूढ़ि को भूलाकर अपने प्रेम के यथार्थ को महत्व देती है। यहाँ चंद्रकला पर पाश्चात्य प्रभाव दिखाई देता है। चंद्रकला के प्रेम की परिणति स्वेच्छा-विवाह में होती है। वह रूढ़ियों परंपराओं को न मानते हुए अपने स्वेच्छा से रजनीकांत के हाथ से अपनी माँग में सिंदूर भरवाकर अपना पति मान लेती है। इसी को वह

चिरंतन नारीत्व का उदय मानती है। और अपने जीवन में अखंड वैधव्य को अपनाती है। इसी को वह यथार्थता मानती है।

चंद्रकलाने जो भी कुछ किया है ऐसी संभावना इस जीवन में बहुत ही कम है। विशेषतः चंद्रकला जैसी शिक्षित स्त्री तो इस काल में चंद्रकला जैसा प्रेम करना संभव नहीं है। आज की स्त्री जरूर भावुक बनेगी, परंतु परिस्थिति बदल जाने पर भावुकता पर नियंत्रण भी रख सकेगी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चंद्रकला जैसा प्रेम इस जीवन में संभव नहीं है। चंद्रकला ने भावुकतावश रजनीकांत को अपना प्रेमी मान लिया है। उसके भावुक हृदय का चित्रण इन शब्दों में व्यक्त हैं - "इसमें विस्मय क्या है? मेरा प्रेमी वहाँ था ··· तुम जानती हो। यह मेरी सुहागरात है ··· कितनी सूनी ··· लेकिन कितनी व्यापुक। इसका अंत नही है। मेरा पुरूष मुझे अपनी गुलामी में न रख सका ··· मुझे सदैव के लिए स्वतंत्र कर गया। मुझे जो अवसर कभी न मिलता, वह मिल गया।"[68] इस तरह चंद्रकला ने प्रथम दर्शन में ही रजनीकांत को अपना मान लिया था। यहाँ मिश्रजी ने चंद्रकला का भावुकतामय चित्रण किया है। और चंद्रकला के प्रेम को जीवन की यथार्थता मान लिया है, जो जीवन व्यतित करने में ठीक नहीं लगता और रूढ़ियों के विरोधी भी लगता है। इस तरह वैधव्य का रूप धारण करके जो उसने स्वछंदता से अपने जीवन का रास्ता अपनाया था वह अन्य कोई नहीं अपना सकती, उसकी अपेक्षा मनोरमा जैसी रूढ़ियों में रहना पसंद करेगी। डा· उमाशंकर सिंह लिखते हैं - "नाटककार उसे ऐसी नारी के रूप में चित्रित करना चाहता था जो जीवन के प्रत्येक कार्य को बुद्धि की कसौटि पर कसकर चले , किंतु उसका चित्रित रूप भावुकता और उन्माद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।"[69] इस प्रकार लक्ष्मीनारायण मिश्रजी ने चंद्रकला का एक शिक्षित होना और शिक्षित होकर भावुकता को न छोडना ऐसा चित्रण किया है। वस्तुतः मिश्रजी पर पाश्चात्य प्रभाव होने से उनके इस नाटक में भावुकता का चित्रण न होना चाहिए था। मिश्रजी पर विशेष रूप से शा और इब्सन का प्रभाव होने के कारण पाश्चात्य शैली का चित्रण करना अपेक्षित है। परंतु मिश्रजी पर पाश्चात्य लेखकों का प्रभाव होकर भी उन्होंने मानव-सुलभ भाव (भावुकता) को नहीं छोडा है। भावुकता नारी

की नैसर्गिक प्रवृत्ति रही है। वह कितनी भी शिक्षित क्यों न हो भावुकता से मुक्त नहीं हो सकती। इस प्रकार मिश्रजी भावुकता के विरोधी होकर भी भावुकता को अपनाते हैं। इस बारें में विनयकुमारजी लिखते हैं - "चंद्रकला मनोजशंकर की नहीं बन पायी यह तो समझ में आ जाता है, लेकिन जिस भावुकता के वेग में वह रजनीकांत की विधवा हो जाती है, उसे बुद्धि का व्यायाम करके भी नहीं समझा जा स्कता। हैरानी तो तब और बढ जाती है, जब याद आता है की नैसर्गिक प्रवृत्ति रही है। इस प्रकार मिश्रजी पर शा और इब्सन जैसे पाश्चात्य लेखकों का प्रभाव जरूर पडा है और उन्होंने अपने नाटकों के चित्रण में शिक्षित नारियों को चित्रित किया हैं परंतु इतना होने पर भी वे भावुकता को पूरी तरह से छोड नहीं सके।

मनोरमा के चित्रण में भी लेखक ने भावुकता का समावेश किया है। मनोरमा का विवाह बचपन में ही हो चुका था। परंतु उसके पति की विवाह के दो साल बाद ही मृत्यू हो जाती है। वह वैधव्य का जीवन बीता रही थी तो उसके जीवन में मनोजशंकर आता है वह भावुकता में विवश होकर उसे अपना प्रेमी तो मानती ही है। वह उससे शादी नहीं कर सकती। क्योंकि उसमें चंद्रकला जैसे रूढ़ि के विरोधी विचार नहीं है। भावुकता में आकर वह कहती है - "अगर तुम मेरे प्रेम का अर्थ समझ सको ... मुझे उसका अवसर दो। मैं तुम्हें अपना दूल्हा तो नहीं बना सकती लेकिन प्रेमी बना लूँगी।"[71] इस प्रकार मनोरमा की भावुकता भी हमारे सामने स्पष्ट हो जाती है। वह भावुकता में आकर विधवा होकर भी मनोजशंकर से शादी तो नहीं, परंतु प्रेम करती है। अतः मिश्रजी भावुकता के विरोधी रहे हैं, परंतु पूरी तरह से भावुकता को छोड नहीं सके।

इस तरह मिश्रजी ने "सिंदूर की होली" में समाज की अनेक समस्याओं का हल बुद्धिवादी तर्कों के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहा है, परंतु जो हल उन्होंने प्रस्तुत किये हैं वे तर्क संगत न होकर भावुकतापूर्ण है। अंतरिक मनोवेगों की तीव्रता की अभिव्यक्ति भावोन्माद के सुंदर चित्र उपस्थित करने में मिश्रजी सफल हुये हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्रजी के समस्या नाटकों में पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव होकर भी भावुकता का चित्रण हुआ है। मिश्रजी भावुकता के विरोधी थे, लेकिन पूरी तरह

से भावुकता से अछूते नहीं रह सके। अपने नाटक में समय-समय पर उन्होंने भावुकता का सहारा लिया है। इसी बारे में डा· भगवतीप्रसाद शुक्ल कहते हैं - "देवी, आशादेवी, चंद्रकला आदि के चरित्र में भावुकता और छिछले रोमांस का परिचय मिश्रजी ने दिया है, यह प्रसाद में भी नहीं मिलता।"[72] अतः भावुकता और रोमांटिक दृष्टि से वे अपने आप को मुक्त न कर सकें।

12· **अर्थ लोलुपता की समस्या :-**

'सिंदूर की होली' नाटक के आरंभ में ही इस समस्या का अंकन हुआ है। मुरारीलाल की अर्थलोलुपता ही वह केंद्र है, जिसके कारण अवसरवादिता , रिश्वत आदि की कुप्रवृत्तियाँ उनमें निर्माण होती हैं। आज के वर्तमान युग में अर्थ से बढकर कोई और नहीं है। अमीर हो या गरीब सभी इसी के पीछे लगे रहते हैं। किंतु उसे प्राप्त करने की लालसा ने मानवता का -हास कर दिया है। यही अर्थ लोलुपता की समस्या मनुष्य को अंत में असहाय बना देती है।

इस नाटक के प्रमुख पात्र डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल आठ हजार रूपयों की खातिर अपने मित्र की हत्या कर देते हैं और इस पश्चात्ताप से दग्ध होकर मित्र के लडके मनोजशंकर को उच्च शिक्षा देकर दामाद बनाने का निश्चय करते हैं। मनोजशंकर के विलायत जाने का खर्चा वे बेकसूर रजनीकांत की हत्या करवाकर पचास हजार रूपया प्राप्त करते हैं। इससे कम रूपया नहीं लेना चाहते। वे कहते हैं - "उससे कम नहीं। धरती फोडकर आकाश छेदकर ··· जहाँ से हो सके उससे कम नहीं।"[73] रजनीकांत के प्रति माहिरअली का हृदय तडप उठता है। वह कहता है - "बेचारा उस दिन रोने लगा था। एक ही खानदान और एक ही खून···।" किंतु मुरारीलाल में कोई परिवर्तन नहीं होता। तब वे कहते हैं उधर का सारा इलाका भगवंतसिंह के रोब में है। जो चाहेगा, कर लेगा। तो फिर मैं क्यों न कुछ पा लूँ। यह अर्थ लोलुपता का विभत्स रूप मुरारीलाल में दिखाई देता है। उनकी पाप की वृत्ति सदैव उनके मन को मथती रहती है। धन के लिए वे इस तरह की हत्याएँ करने में पीछे नहीं हटते। अपने मित्र की हत्या का पश्चात्ताप होने पर भी धन की लोलुपता के

कारण उनके द्वारा दूसरी हत्या हो जाती है।

किंतु अंत में यह धन किसी भी काम नहीं आता है। उनकी इकलौती बेटी चंद्रकला उनका साथ छोड देती है। वह स्वयं को पिता के कर्म का प्रायश्चित समझकर अपना रास्ता खुद नापती है। मनोजशंकर भी उनसे मुँह मोड लेता है। इस तरह उनकी अर्थलोलुपता उन्हें ही खा जाती है।

इस तरह नाटककार ने इस वर्तमान समस्या को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उच्च पदीय अधिकारी मुरारीलाल जैसे कितने ही लोग इस धन का शिकार बन चुके हैं। वास्तव में मुरारीलाल ने इस नाटक में खलनायकत्त्व की भूमिका निभायी है। "न्याय के अधिकारी व्यक्ति और पैसे का लोभ उनपर करती आत्मओं की व्यथाएँ, रायसाहबी विशेषण, आनरेरी मॅजिस्ट्रेट तथा डिप्टी कलक्टर जैसे उत्तरदायी शब्द निरीह आत्माओं के व्यापारी हैं।"[74] इस तरह कानून की रखवालों की प्रतिष्ठा एक लेन-देन की व्यापार बन गयी है। किंतु मुक्त में पाया हुआ धन अंत में मुरारीलाल को असहाय बना देता है। वह अपना सबकुछ खो देता है। मिश्रजी ने बडे ही सहजता से अर्थलोलुपता की समस्या को प्रस्तुत किया है।

13· **रिश्वतखोरी की समस्या :-**

अर्थलोलुपता की समस्या ही इस समस्या को जन्म देती है। मुरारीलाल पचास हजार रूपये रिश्वत लेकर रजनीकांत की हत्या करवा देते हैं। यदि वे यह रिश्वत नहीं लेते तो भगवंतसिंह यह हत्या नहीं कर सकता था। किंतु उसने यह रिश्वत देकरकानून को अपने हाथ में ले रखा था। वे जानते हैं, यदि यह रिश्वत मैं नही लूँगा तो कोई दूसरा ले लेगा। यह सिलसिला चलता ही रहेगा और हत्याएँ होती रहेगी। जब इन्हे इस हत्या का जिम्मेदार समझने पर वे कहते हैं - "मेरी वजह से नहीं माहिर ··· । संसार में भलाई बुराई का भाव अब नहीं हैं। आज इसने दस हजार दिया है। दस दस रूपया देकर यह गवाहों को बिगाड देता। एक हजार भी नहीं खर्च होता। और यह छूट जाता। आजकल का कानून ही ऐसा है।"[75]

परंतु यह रिश्वत उन्हें काफी महँगी पडती है। मनोज तो इन पैसों से विलायत न जा सका। और चंद्रकला वैधव्य को अपनाती है। तब मुरारीलाल कहते हैं "दुनिया जान गयी कि मेरी लडकी अस्पताल में एक मारे हुए लडके की सहानुभूति में वहाँ तक खींच गयी थी ... । मैं कल किस मुँह से कचहरी जाऊँगा ?"[76] इस तरह चंद्रकला स्वयं को पिता के कर्म का प्रायश्चित समझकर घर छोड जाने का निश्चय करती है। तब मुरारीलाल चारों ओर से असहाय हो जाते हैं। उन्हें अपने कर्मों का फल 'कर्म-प्रतिफल न्याय सिद्धान्त' नुसार ईश्वर से मिलता है।

इसी प्रकार मिश्रजी ने मुरारीलाल जैसे उच्च पदीय अधिकारों की रिश्वतखेरी को प्रस्तुत किया है। नाटकार ने इस समस्या के माध्यम से बताया है कि मनुष्य को बूरे कार्य नहीं करना चाहिए। जैसा वह कर्म करेगा उसे वैसा ही फल मिलेगा। "जब चिडिया चूभ गयी खेत, फिर पछतावा करने से क्या लाभ?" आज के वर्तमान समाज में किस तरह रिश्वत के बलपर मनुष्य ही मनुष्य को खा जाता है और इससे कितनी भयंकर समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, यह स्पष्ट करना मिश्रजी का उद्देश्य रहा है।

14· **कला की समस्या :-**

"सिंदूर की होली" नाटक मे कला की समस्या भी उभर आयी है। मनोरमा चित्रकला में निपुण है। वह अपनी भावनाओं का आरोपन रजनीकांत का चित्र निकाल कर करती है - "चित्र इतना सजीव मालूम हो रहा है, जैसे अभी हँस पडा है। एक दिन के लिए ... घडी भर के लिए यहाँ आये क्यों?"[77] इस तरह यह चित्र रजनीकांत को सहस्त्रमुखी कर देता है जिससे प्रतीत होता है कि मनोरमा भी उसकी ओर आकृष्ट है। यही चित्र वह रजनीकांत की पत्नी को भेजना चाहती हैं तब चंद्रकला उसे निष्ठूर कहती है। यही तो कला की समस्या हैं जिसे चंद्रकला समझ नहीं पाती। मनोरमा कला की भावना को कमल की उपमा देती हुए कहती है - "इसका मतलब कि किचड में कमल नहीं उगना चाहिए। लेकिन जो स्वभाव है, वह, कमल ताल के कीचड में उगेगा, लेकिन गंगा के बालू में नहीं। यही तो लोग नहीं समझते।"[78]

वह कला को महत्व देती है। शिक्षा और कला का सम्बन्ध कुछ नहीं है। कला का आधार तो है विश्वास और शिक्षा का संदेह।

कला कोई वस्तु नहीं जिसे खरीदी जा सके। कला का कोई मूल्य नहीं होता। यही बात मुरारीलाल समझ नहीं पाता। मनोरमा का जीवन नीरस है किंतु वह कला के कारण अपने नीरसपूर्ण जीवन में आनंद लेती है। कला की साधना अपने लाभ के कारण नहीं होती। कला अपनाने में मन की कोमलता, चाह महत्वपूर्ण है। यही बात मुरारीलाल को समझाती हुई मनोरमा कहती है - "कला की साधना अपने लाभ के विचार से नहीं होती। गुलाब खिल रहा था, बसंत आ रहा था··· उसे देखकर मेरी कल्पना और भावना उत्तेजित हो उठी ··· मैंने उसका चित्र बना दिया।"[79] इसी कला के माध्यम से मनोरमा अपना जीवन-यापन करती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मनुष्य के जीवन मे सभी जगह दुःख ही दुःख हो तो वह कला के सहारे जीवन-यापन कर सकता है। उसके जीने का सहारा एक मात्र रह जाता है वह है कला। इसी प्रकार मनोरमा के जीवन मे जीने का एक ही मार्ग रहा है। मनोरमा चित्रकला में प्रविण है। उन्होंने रजनीकांत का चित्र खींचा है। उसकी चित्रकला में अपूर्व सामर्थ्य है। इस प्रकार मनोरमा अपनी चित्रकला के माध्यम से अपना जीवन-यापन कर रही है। मनोरमा की बातों से ऐसे जान पडता है कि उसका मन निरस है किंतु उसकी तूलिका हृदय को हिला देती है। वह कहती है - "इसलिए कि वह तूलिका होती है ··· उसके भीतर शरत की चाँदनी होती है, वसंत का पवन होता है··· ग्रीष्म का अनुताप होता है।"[80] इस प्रकार मनुष्य जीवन के दुःख को भुलाकर जीवन-यापन करने के लिए कला का सहारा लेता है। किंतु इसमें असफल होने पर कला का त्याग भी करती है। जिस प्रकार मनोरमा ने अंत में कला का त्याग कर दिया है। रजनीकांत के चित्र को अपने जीवन की कला का अंतिम अध्याय समझती है और विधवा जीवन की सार्थकता त्याग में मानती है।

इस तरह मिश्रजी ने कला की समस्या को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। मानव जीवन में कला का महत्वपूर्ण स्थान होता है। वह कला के लिए नहीं होती जीवन के लिए होती हैं।

निष्कर्ष :-

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'सिंदूर की होली' एक समस्यात्मक महत्वपूर्ण (अभिनव) रचना है। मिश्रजी पर इब्सन तथा शॉ की बौद्धिकता एवं आधुनिकता का विशेष प्रभाव रहा है। परंतु मिश्रजी भारतीय संस्कृति को छोड नहीं सके। इस नाटक का प्रधान उद्देश्य सत्य की खोज करना है। इस नाटक की सृष्टि कर लेखक ने नाट्य साहित्य को एक नूतन दृष्टि प्रदान की है।

इस नाटक का कथानक तीन अंकों में विभाजित किया गया है। प्रथम अंक में समस्या को उपस्थित किया गया है। दूसरे अंक में उसकी व्याख्या की गयी है। और तीसरे अंक में उसका समाधान बौद्धिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार नाटक के कथानक का गठन प्रस्तुत किया है।

'सिंदूर की होली' इस समस्या नाटक की प्रमुख दो विशेषता रही हैं - एक ही घटना का चित्रण हुआ है - वह है रजनीकांत की हत्या। वह भी सूचित किया गया है। दूसरी विशेषता यह है कि चंद्रकला बीस वर्ष की आयु में विवाहित एवं मरणासन्न रजनीकांत के हाथों से अपनी माँग में सिंदूर भरवाकर सिंदूर की होली खेलती है।

इस नाटक के अंतर्गत चिरंतन एवं आधुनिक नारीत्व की समस्या और विवाह की समस्या प्रमुख हैं। चंद्रकला एवं मनोरमा के माध्यम से नाटककार ने एक ओर समाज को अपनाया है। इस तरह लेखक ने इस नाटक में आदर्श एवं यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

मिश्रजी ने विधवा-विवाह को समाज के लिए अयोग्य माना है। इससे तलाक की समस्या का आगमन होगा और अविश्वास में मनुष्य भटकता रहेगा। उनका मत है कि विधवा का होना समाज के लिए गौरव की चीज है, वह समाज का आदर्श है। साधना, त्याग और तपश्चर्या की वह करूण मूर्ति है।

लेखक ने बुद्धिवादी एवं भावुकता की समस्या को भी प्रस्तुत किया है। उनके नारी पात्र प्रेम में असफल होने पर बुद्धिवादी बन जाती हैं। मिश्रजी का प्रधान उद्देश्य बुद्धिवाद का प्रतिपादन करना है। किंतु वे भावुकता का त्याग नहीं कर सके, वे परंपरावादी ही रहें। इस प्रकार लेखक पर पाश्चात्य प्रभाव होकर भी वह भावुकता को त्याग नहीं सके।

नाटक में प्रवेश से लेकर अंत तक अंतरद्वंद्व की समस्या का चित्रण सफलता से हुआ है। सभी पात्र किसी-न-किसी अंतरिक समस्या मे पीडित दिखलाये गये हैं।

पट्टीदारों की कलह की समस्या स्वतंत्रता पूर्व भारतीय समाज तथा जमीनदारों के अत्याचार का चित्र उपस्थित करता है। इसके अतिरिक्त नाटक की अन्य समस्याएँ स्वच्छंद प्रेम की समस्या, काम समस्या, कानून द्वारा न्याय की समस्या, रोग के उपचार की समस्या, अर्थ लोलुपता की समस्या, रिश्वतखोरी की समस्या, और कला की समस्या आदि वर्तमान देश काल की ज्वलंत समस्याएँ हैं।

काम समस्या एवं स्वच्छंद प्रेम की समस्या का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। काम समस्या पर फ्रायड का प्रभाव रहने के कारण पुरूष जाति से घृणा तथा रूढ़ि का विरोध किया है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण स्वच्छंद प्रेम में सिंदूर की होली दिखायी देती है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इन समस्याओं का हल अंत में बौद्धिक धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अतः समस्या नाटकों में 'सिंदूर की होली' एक सफल समस्या नाटक एवं नव-गति प्रदान करनेवाली अमर रचना है।

संदर्भ-सूची

1· लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का स्वरूप विश्लेषण, डा·कर्णसिंह भाटी, पृ·119

2· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·उमाशंकर सिंह, पृ·62

3· वही, पृ·74

4· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·उमाशंकर सिंह, पृ·88

5· सिंदूर की होली, श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·11

6· वही, पृ·33

7· वही, पृ·50

8· लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का स्वरूप-विश्लेषण, डा·कर्णसिंह भाटी, पृ·71

9· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·51

10· वही, पृ·54

11· वही, पृ·63

12· वही, पृ·83

13· वही, पृ·104-105

14· वही, पृ·116

15· जयशंकर प्रसाद और ल·ना·मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, शशी शेखर नैथानी, पृ·93

16· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·5

17· वही, पृ·16

18· वही, पृ·28

19· आधुनिक हिन्दी नाटक और नाटयकार, डा·रामकुमार गुप्त, पृ·119

20· आधुनिक हिन्दी नाटक, सुरेशचंद्र शुक्ल, पृ·74

21· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·102

22· वही, पृ·78

23· वही, पृ·103

24· वही, पृ·109

25· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·42

26· वही, पृ· 51

27· वही, पृ·82

28· लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या नाटकों का स्वरूप विश्लेषण, डा·कर्णसिंह भाटी, पृ·109

29· हिन्दी नाटकों का विधान और वस्तु विकास, चंदूलाल दूबे, पृ·144

30· हिन्दी नाटक, डा·बच्चनसिंह, पृ·163

31· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण सिंह, पृ·101

32· वही, पृ·51

33· वही, पृ·83

34· वही, पृ·67-68

35· आधुनिक हिन्दी नाटक और नाट्यकार, डा·रामकुमार गुप्त, पृ·120

36· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·उमाशंकर सिंह, पृ·100

37· हिन्दी नाटक समाजशास्त्रीय अध्ययन, डा·सीताराम झा "श्याम", पृ·204

38· आधुनिक हिंदी नाटक और नाट्यकार, डा·रामकुमार गुप्त, पृ·121

39· हमारी नाट्य् परंपरा, श्रीकृष्णदास, पृ·595

40· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·54

41· आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक एवं नायिकाकी परिकल्पना, डा·मलखानसिंह सि सौदिया, पृ·235

42· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·51

43· नव्य हिन्दी नाटक, डा·सावित्री स्वरूप, पृ·237

44· नाटक-परंपरा परिवेश, डा·लक्ष्मीनारायण भारद्वाज, पृ·162

45· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·उमाशंकर सिंह, पृ·227

46· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·6

47· वही, पृ·27

48· वही, पृ·87

49· वही, पृ·57

50· वही, पृ·118

51· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, 101-102

52· वही, पृ·101

53· वही, पृ·72

54· वही, पृ·70

55· वही, पृ·71

56· वही, पृ·74

57· हिन्दी साहित्य : सर्वेक्षण और समीक्षा, श्यामनंदन प्रसाद सिंह, पृ·514

58· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·36-37

59· हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव, विश्वनाथ मिश्र, पृ·286

60· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·80

61· हिन्दी नाटक, डा·बच्चनसिंह, पृ·169

62· वही, पृ·168

63· वही, पृ·52

64· हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव, विश्वनाथ मिश्र, पृ·285

65· हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, राम बहोरी शुक्ल और भगीरथ मिश्र, पृ·525

66· हिन्दी नाटक, डा·बच्चनसिंह, पृ·170

67· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·35

68· वही, पृ·104-105

69· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·उमाशंकर सिंह, पृ·223

70· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·विनयकुमार, पृ·200

71· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·51

72· प्रसाद-युगीन हिन्दी नाटक, डा·भगवतीप्रसाद शुक्ल, पृ·221

73· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·24

74· आधुनिक हिन्दी नाटकों में खलनायकत्व, डा·त्रिपुरारिशरण श्रीवास्तव, पृ·178

75· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·27

76· सिंदूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·113

77· वही, पृ·36

78· वही, पृ·34

79· वही, पृ·40-41

80· वही, पृ·52-53